RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 03 प्रकाशन तिथि : 25 फरवरी कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 मार्च, 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

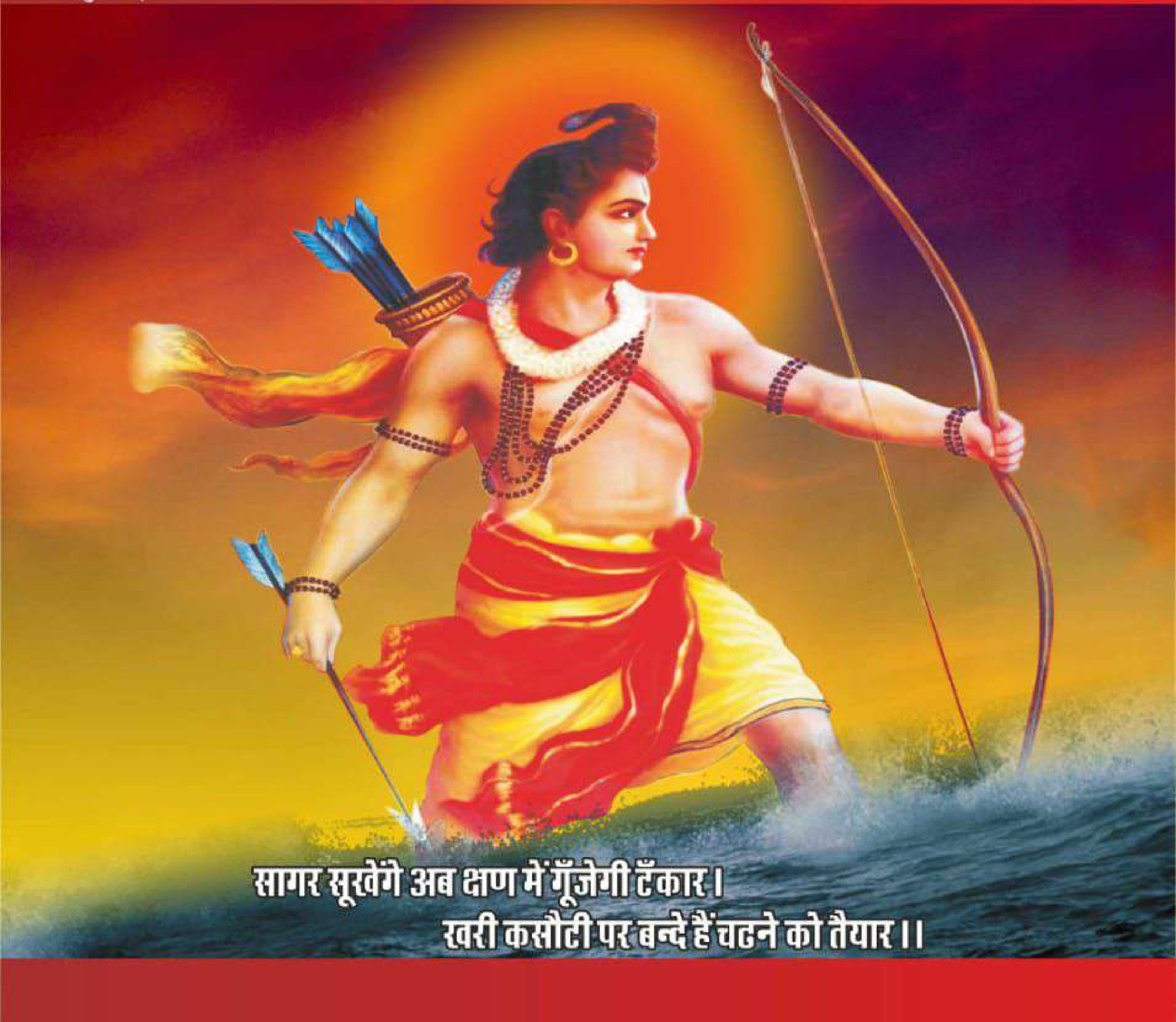

Vikram Singh Shekhawat
(Kerpura, Khandela)

TenderKings
Easy to Spot, Bid it Why Not ??

Our Services:-

- Tender Infromation
- Joint Venture
- Tender Result
- Sub- Contracting
- Digital Signature Certificate
- Vendor Approval
- Auction Material
- Bidding Support
- Tender Training

www.tenderkings.com
follow us:-

Contact us

Sales : 9672022299 | 9672442299
Support : 9672042299 | 9672062299
Email : info@tenderkings.com
S-3, Vinayak Mahima Group
Building JDA Market, Amrapali Circle
Vaishali Nagar, Jaipur-302021

Other Companies

- Vinayak Kripa & Com.
- VM Infraprojects Pvt. Ltd.
- KPR Industries (G-7, Industrial Area Khandela)
- Srihari Constructions

संघशक्ति

4 मार्च, 2021

वर्ष : 57 अंक : 03

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	10
☞ महान् क्रान्तिकारी-राव गोपालसिंह-खरवा	✍ डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	15
☞ पुरुषोत्तम भगवान राम का वन गमन	✍ श्री मूलसिंह चांदेसरा	18
☞ सत्संग और कुसंग	✍ श्री जयदयालजी गोयन्दका	21
☞ संघ का व्यावहारिक दृष्टिकोण	✍ श्री महिपालसिंह चूली	25
☞ बुद्धिमान	✍ रश्मि रामदेरिया	27
☞ विद्या	✍ संकलित	28
☞ नारी शक्ति का कोई विकल्प नहीं	✍ श्री भँवरसिंह रेड़ी	30
☞ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

संघ संस्थापक की जयन्ती :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी की 97वीं जयन्ती बड़े हर्षोल्लास के साथ अनेक स्थानों पर मनाई गई। पू. तनसिंहजी का जन्म 25 जनवरी, 1924 के दिन हुआ था। 25 जनवरी, 2021 को उनकी जयन्ती संघ के विभिन्न क्षेत्रों में श्रद्धापूर्वक मनाई गई। इस अवसर पर पूज्यश्री के प्रेरणादायी जीवन की जानकारियों से कार्यक्रमों में सम्मिलित सभी श्रोतागण लाभान्वित हुए।

25 जनवरी को सुबह माननीय संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी का वर्चुअल उद्बोधन हुआ। इससे पूर्व संचालन प्रमुख श्री लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास ने पूज्यश्री का जीवन वृतान्त संक्षिप्त रूप में वर्चुल रूप से ही प्रस्तुत किया।

राजस्थान के विभिन्न संघ प्रान्त क्षेत्रों में कई गाँवों व शहरों में जयन्ती कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। बाड़मेर स्थित आलोक आश्रम तथा सिवाना के बेरा सुन्दरिया में आयोजित कार्यक्रमों को माननीय संघप्रमुखश्री ने सम्बोधित किया। चोहटन, सेड़वा, शिव, धारवी कलां, गुड़ामालानी, मीठड़ा, गडरा रोड़, रामसर, गिराब, हरसाणी, खंडप आदि बाड़मेर जिले के विभिन्न गाँवों में जयन्ती कार्यक्रम आयोजित किये गये। बाड़मेर जिले के ही संघ प्रान्त बालोतरा में सात दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसके अन्तर्गत दाखां, विवेकानन्द उच्च माध्यमिक विद्यालय बालोतरा, टापरा, वेदरलाई गोपड़ी, वीर दुर्गादास राजपूत छात्रावास बालोतरा, वरिया, मल्लीनाथ छात्रावास सिणधरी तथा जागसा में कार्यक्रम आयोजित हुए। इसी प्रकार संघ प्रान्त कल्याणपुर ने भी साप्ताहिक कार्यक्रम का आयोजन किया जिसके अन्तर्गत थोब, कल्याणपुर, चारलाई कलां, देमो की ढाणी, कांकराला, दईपड़ा खींचियान तथा रेवाड़ा जेतमाल में कार्यक्रम आयोजित हुआ।

जोधपुर क्षेत्र में हनुवंत छात्रावास, बासनी संघ कार्यालय तनायन, शिक्षक कॉलोनी, विजयनगर चौपासनी, गुरों का तालाब, ओल्ड कैंपस, भेड़, पीलवा, केतुमदा, बापीणी, ओसियां, बेलवा, राजगढ, सेतरावा, जेठानिया, साथीन आदि स्थानों पर कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। जालोर, दहिवा, अचलपुर, बागोड़ा, बेदाना, जसवंतपुरा, हरियाली, बोकाड़ा, कवराड़ा, रानीवाड़ा, भीनमाल में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। जवाहिर छात्रावास जैसलमेर, मोहनगढ़, दवाड़ा, झिंझनियाली, रामगढ, तेजमालता, शोभ, बरणा, बेरिसयाला, म्याजलार, रणधा, पोछीणा, इन्द्रा कॉलोनी, दवीकोट, पोकरण, रामदेवरा, टाबरीवाला में कार्यक्रम हुए।

संघ कार्यालय नारायण निकेतन बीकानेर, करणी राजपूत छात्रावास नोखा, करणी राजपूत छात्रावास सरदारशहर, मोतीगढ, गोकुल, रेडी, सूरतगढ़, नोसरिया, मिगसरिया, तनसिंहपुरा, आशापुरा, पूगल में जयन्ती कार्यक्रम सम्पन्न हुए। सिरोही जिले के रेवदर, मांडाणी, चूली आदि में, नागौर, आयुवान निकेतन कुचामन, छापड़ा आदि में, सेंथी चित्तौड़गढ़ में, मीरा गर्ल्स स्कूल सीकर में, कांठल डूंगरपुर में, गुड़ा चतुरा, बगड़ी नगर, छोटी रानी, पाली, रायपुर, खिंदारा-पाली में जयन्ती मनाई गई। संघशक्ति कार्यालय जयपुर में इस अवसर पर पारिवारिक स्नेह मिलन व भोज का कार्यक्रम भी रखा गया।

गुजरात क्षेत्र में जाखाणा, वेडा, पीलूड़ा, धानेरा, मालण, काणेटी, कराड़ा, मोरचन्द, संघ कार्यालय शक्तिधाम सुरेन्द्रनगर, वल्लभीपुर, सूरत में, वर्चुअल रूप से मुम्बई में, केरल के तिरुवनंतपुरम में, कर्नाटक के बैंगलोर तथा दावणगेरे में जयन्ती कार्यक्रमों का आयोजन हुआ।

पूज्य तनसिंहजी के गाँव रामदेरिया में 26 जनवरी को आयोजित कार्यक्रम को संघप्रमुखश्री ने सम्बोधित किया। 26 को ही अलखनयन मंदिर उदयपुर में, कोसाड़ा सूरत में, बाबा बावड़ी जैसलमेर में जयन्ती मनाई गई। कुछ स्थानों पर महिलाओं ने आयोजन किया तथा कुछ स्थानों पर पूर्व संध्या के रूप में 24 को भी कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन– केन्द्रीय बैठक 24 जनवरी को जयपुर में सम्पन्न हुई। आरक्षण सम्बन्धी विभिन्न विसंगतियों के लिये सरकार तक बात पहुँचाने का निर्णय भी लिया गया जिसके अन्तर्गत 10 फरवरी से ज्ञापन देने प्रारम्भ किए गये और सभी जगह ज्ञापन सौंपे गये।

रक्तदान शिविर– पू. तनसिंह की जयन्ती के अवसर पर प्रतिवर्ष की तरह संघशक्ति कार्यालय में 24 जनवरी को रक्तदान शिविर का आयोजन हुआ।

चलता रहे मेरा संघ

{पू. तनसिंहजी की 97वीं जयन्ती 25 जनवरी, 2021 को संघप्रमुख माननीय भगवानसिंहजी द्वारा वर्चुअल उद्‌बोधन।}

25 जनवरी, 1924 के दिन भारतवर्ष के सीमान्त प्रदेश में ठाकुर बलवंतसिंह जी के घर माता श्रीमती मोती कंवर जी सोढ़ी जी की कोख से पूज्य तनसिंहजी का जन्म हुआ। यह 97 वर्ष पूर्व की घटना है। आज उनकी जयन्ती भारतवर्ष के विभिन्न शहरों में, गाँवों में, अनेकों जगह पर हर्षोल्लास के साथ मनाई जा रही है। जीवन के कुल साढ़े 55 वर्ष वे इस धरती पर रहे। 7 दिसम्बर, 1979 को उन्होंने शरीर छोड़ा और उस दिन से उनकी पुण्यतिथि भी मनाई जाती रही है। उनका स्मरण क्यों किया जा रहा है यह महत्त्वपूर्ण बात है। उन्होंने ऐसा क्या किया, किसके लिये किया, इसका वर्णन मैं विस्तार से नहीं करूँगा। जो क्षत्रिय युवक संघ को जानते हैं, वो तनसिंहजी को जानते हैं और जो तनसिंहजी को जानते हैं, वो उनके क्रियाकलापों को जानते हैं, वो क्षत्रिय युवक संघ को जानते हैं। उन्होंने अपने परिवार के लिये क्या किया? अपने गाँव के लिये क्या किया? यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि उन्होंने मानवजाति को क्या दिया, इस राष्ट्र को क्या दिया, समाज को क्या दिया।

विद्या अध्ययन काल में तीन मुख्य स्थान उनके रहे हैं। बाड़मेर के बाद चौपासनी विद्यालय में मैट्रिक की परीक्षा पास की, पिलानी शिक्षण संस्थान में ग्रेजुएशन किया, नागपुर में विधि स्नातक बने उसी समय में क्षत्रिय युवक संघ के वर्तमान स्वरूप की स्थापना उन्होंने जयपुर में आकर के की... अपने साथियों से विचार-विमर्श कर के। क्षत्रिय युवक संघ का नाम लेते ही प्रत्येक व्यक्ति के जेहन में यह बात आती है कि वे केवल राजपूतों के थे। यह सही आकलन नहीं होगा। निश्चित ही, आज राजपूत कहे जाने वाले घर में उन्होंने जन्म लिया। लेकिन उनके गुण और कर्म कैसे थे, इस बात को समझना आवश्यक है। क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना के साथ क्षत्रिय क्या होता है, क्षत्रिय का कर्त्तव्य क्या होता है, यह अनेक शास्त्रों को पढ़कर के उन्होंने सार निकाला.....और राजपूत से कहीं अधिक वे क्षत्रिय कहलाना पसंद करते थे। जो क्षय से त्राण कराये, जो दुखों को दूर करे, जो विष का विनाश करे, अमृत की रक्षा करे-वो क्षत्रिय है।

तो प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे लोगों का संगठन किया जा सकता है, क्या इस संसार में इस प्रकार के लोग हैं? निश्चित ही इसका उत्तर सही नहीं दिया जा सकेगा। उन्होंने क्या चाहा था, क्या कर पाए और शेष कैसी उम्मीदें छोड़ गए? इसका विद्वजन ही आकलन कर सकते हैं, वही बता सकते हैं। मेरे जैसी क्षुद्र बुद्धि से...इनका आकलन नहीं किया जा सकता। कुछ लोग कहते हैं कि वे राजनीति में थे, बाड़मेर नगरपालिका चेयरमैन थे, राजस्थान विधानसभा के दो बार विधायक थे, इसलिए उनकी जयन्ती मनाई जानी चाहिए। वे बाड़मेर जैसलमेर लोकसभा से भारत की पार्लियामेन्ट के सांसद थे....दो बार...इसलिए उनकी जयन्ती मनाई जानी चाहिए। इस बात को ना तो वे...ना कोई भी भला आदमी, इसको स्वीकार करेगा। ऐसे तो हजारों और लाखों लोग होंगे जिनकी जयंतियाँ मनाते-मनाते हम थक जाएँगे।

बहुत सारी क्षमताओं को समेटे हुए, अपने लिये ना करके, अन्यों के लिये जीने वाले क्षत्रिय का जीवन उन्होंने जिया। धंधे के रूप में उन्होंने वकालत भी की। किन्तु जो पहले से असत्य का सहारा लेकर के उनके पास केस लाते थे उनको वो नकार देते थे। सदैव न्याय का पक्ष लिया। जीवन भर न्याय का पक्ष लेते रहे, न्याय किया। धर्म का जीवन जिया, अधर्म का विरोध किया, धर्म की स्थापना की, अधर्म का विनाश किया। और इसीलिए उन्हीं की यह उक्ति है कि विष का विनाश और अमृत की रक्षा होनी ही चाहिए। क्योंकि इतिहास बताता है कि यह केवल क्षत्रिय कर सकता है। यदि हम राजपूत हैं तो क्षत्रिय बने बिना, केवल संगठन बनाकर के, क्षात्र प्रवृत्ति के बिना.... हम ये काम नहीं कर सकते। वह काम उन्होंने किया। उन्होंने बालकों को संस्कार देकर के संस्कारित किया। निश्चित रूप

से हजारों, लाखों लोग उनसे जुड़े लेकिन सभी उनके साथ नहीं रह सके क्योंकि उनका मार्ग बड़ा कठिन था।

वो मार्ग आज भी क्षत्रिय युवक संघ ने अपना रखा है, हम उसी मार्ग पर चलते हैं। हम भी कोई श्रेष्ठ प्राणी बन गए हैं, श्रेष्ठ संस्कारवान व्यक्ति बन गए हैं, क्षत्रिय बन गए हैं, ऐसा दावा हम नहीं करते। लेकिन हम अपने आपको प्रस्तुत करते हैं.....भगवान का स्मरण करके....कि हे भगवान! हमारे जीवन को सफल तभी माना जाए जब जो तनसिंहजी ने चाहा था, वो क्षत्रिय बनकर के हम दिखाएँ, दूसरों को राहत देने वाले बन जाएँ। पूर्वजों ने जो इतिहास रचा उसी मार्ग पर हम चलें और इसी प्रार्थना से हम प्रात: काल, सुबह से लेकर शाम तक भगवान को याद रखते हुए, पूज्य तनसिंहजी को याद रखते हुए, कर्म में रत रहते हैं। कुछ लोग स्तम्भ बनकर भी बिखर गए, यह बहुत स्वाभाविक है। भगवान की इच्छा क्या है यह हम नहीं जानते। रावण को भी भगवान बनाता है, राम को भी भगवान बनाता है और उनसे जो काम लेना है वह भगवान भली प्रकार लेता है। जिन लोगों को उनके साथ होना है, भगवान उनको साथ रखता है और जिनको साथ नहीं रखना है उनको भगवान नहीं रखते हैं। किसी व्यक्ति की इच्छा इसमें काम नहीं कर सकती। हमारे ऊपर बड़ी कृपा रही ईश्वर की कि अंत तक हम साथ में रहे....और ऐसे संकल्प को संजोए बैठे हैं कि हम हमारे जीवन भर तक...इस साथ रहने का....उनके बताए मार्ग पर चलने का कार्य करते रहेंगे। उन्होंने बहुत बड़ा साहित्य लिखा..जो कठिन है समझना। गीता तो भगवान कृष्ण ने बोली थी लेकिन लाखों टीकाएँ उस पर हुई हैं, आपस में बड़ा मतभेद है। उनकी लिखी हुई किताबों में, उनकी रचनाओं में इतने गूढ़ तत्त्व भरे हुए हैं कि उनको समझना बड़ा कठिन है। इसलिए थोड़ी बहुत विभिन्नता, हम लोग जो उनके साथी कहे जाते हैं उनकी समझ में अन्तर रहता है। उनके लिखे हुए गीत इतने कठिन हैं....फिर भी हम उनकी व्याख्या करते हैं, अपने-अपने दृष्टिकोण से।

जोधपुर जिले में बाला गाँव में सती रूप कंवर जी हुए थे। उनसे मिलकर के तनसिंहजी एक बार आए थे। और कुछ लोग वहाँ बैठे थे....उनसे पूछताछ की...और तब सती बापजी ने बताया कि ये बहुत ही सीधे आदमी हैं, संसार में बहुत बड़ा काम कर रहे हैं, किन्तु प्रकट नहीं हुए। यह उनका स्वभाव था। ना प्रेम को प्रकट करते थे, न द्वेष को प्रकट करते थे....गंभीर आचरण....और जिन लोगों को अपने अन्तर में बांधा....उन लोगों को संदेश दिया-'बंधनों को तोड़ कर के जा रहे किस ओर राही।' उन्होंने बंधन बनाए संसार के लिए, श्रेष्ठ कार्य करने के लिए। राष्ट्र से बाँधा, धर्म से बाँधा, नीति से बांधा, संस्कारों से बाँधा। जो लोग उन सब बन्धनों से अपने आप को तोड़ते हैं, वे संसार में कभी श्रेष्ठ कार्य नहीं कर सकते, और उन्हीं बंधनों को स्वीकार करने वाले, उन्हीं बंधनों में रह करके ध्येयनिष्ठा के साथ, एकनिष्ठता के साथ जो कार्य करते हैं, उन्हीं लोगों को याद किया जाता है, उन्हीं की जयंतियाँ मनाई जाती है। आज तभी देश के सिवाय विदेश में भी जयंतियाँ उनके अनुयायी मना रहे हैं, मनाते रहे हैं।

हम लोग उनको कितना समझ पाए, यह कहना भी इतना सरल नहीं है। और जो बात उन्होंने बताई, उसको समझे बिना और लोगों को समझाया नहीं जा सकता। उन्होंने जो क्षत्रिय युवक संघ को संदेश दिया, वही संसार के लिए संदेश था। वह संदेश ही लोक शिक्षण था। लोक शिक्षण कभी लोक संग्रह के बिना सम्भव नहीं है, लोक शिक्षण लोक संपर्क के बिना सम्भव नहीं है। इसीलिए, आज के दिन इन्हीं बातों को याद करते हुए उनके अनुयायी जगह-जगह पर लोक संपर्क करते हैं...बुला करके इकट्ठे करते हैं, शाखाएँ लगाते हैं, शिविर लगाते हैं, शिक्षण देते हैं। वही लोक संग्रह फिर लोक शिक्षण बनता है....और जो इस बात को समझे, वो ही समझा सकता है और इसीलिए इनको समझना आवश्यक है। आज आपके यहाँ पर जो जयन्ती मनाई जा रही है....उन सबको यह बात समझने की आवश्यकता है कि कोई प्रचार करने के लिए नहीं है। तनसिंहजी राजनीति में भी रहे, प्रचार को वे जहर मानते थे, कि यह मुगालता है एक...जो नहीं है उसको प्रचार में बताते हैं। उन्होंने कभी अपना प्रचार इस ढंग से नहीं किया। दूसरे

(शेष पृष्ठ 17 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

समाज कहाँ, किस स्थिति में है, इसका आकलन करें, तो पायेंगे, जो समाज सतोन्मुखी था, वह समाज अब तमोगुण से आक्रान्त हो गया। वह अपनी क्षात्रशक्ति को विस्मृत कर पथ-विचलित कर धर्मच्युत होकर गर्त में धसता जा रहा है। समाज की दशा क्या बिगड़ी, संगठन के अभाव में पूरा का पूरा बिखर कर कण-कण का हो गया। अब दिशाहीन होकर किंकर्तव्य विमूढ सा खड़ा है। क्षत्रिय की इस जड़ता जन्य विकृतियों से सामाजिक ढांचा अस्त-व्यस्त हो गया। सारी व्यवस्थाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी। अब इनके पास न समृद्धि रही, न सहारे के रूप में कोई सहयोगी। साधनहीन के पास रह भी क्या सकता है। असहाय व लाचार समाज की जड़ें हिल गयी। पूरा का पूरा समाज खोखला बन चुका।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने समाज को देखा, समाज के लोगों को देखा, अपने आपको देखा, भली-भाँति आकलन करके आशा और उम्मीद से बोले-

''तुम जानते ही हो, मेरे पास अब कुछ भी नहीं है। अपने आस-पास के वातावरण को प्रभावित करने के जो प्रचलित साधन हुआ करते हैं, उनमें से एक भी मेरे पास नहीं है। न धन, न सहयोग, न आकर्षक विचारधारा और न महत्त्वाकांक्षी सहयोगी, फिर भी मैंने अतीत से लेकर आज तक कुछ भी नहीं खोया है, पाया ही है। तुम्हारे निर्माण के पीछे मेरा श्रम और श्रद्धा, यह दो महत्त्वपूर्ण तत्व रहे हैं। और मैं सोचता हूँ, श्रम और श्रद्धा के सहारे ही कोई भविष्य बना सकता है।

''अथक परिश्रम और अपने प्रति अटूट विश्वास ही मेरे समाज जीवन की अमूल्य निधियाँ हैं। अपने प्रति अटूट विश्वास ही मुझे दूसरों के प्रति अटूट विश्वास पैदा करता है और वही मुझे श्रद्धा की उपयोगी शिक्षा देता है। श्रद्धा, जो आज के युग में बड़ा ही विवादास्पद गुण है, किन्तु विषम परिस्थितियों में ऐसा सम्बल और कोई हो नहीं सकता। जब अपने पराये हो जाते हैं, अपने सारे प्रयत्न विफल या अपर्याप्त हो जाते हैं और जब जीवन में असहायावस्था का भान होता है तब केवल श्रद्धा ही सहायता जुटा सकती है और जुटाती आई है।''

गीता में भी श्रद्धा को बहुत महत्त्व दिया है। गीता में कहा गया है, कि श्रद्धावान व्यक्ति मेरे मत के अनुसार चलेगा तो मुक्त होगा –

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।

गीता- 3/31

जो कोई भी मनुष्य दोष रहित और श्रद्धा से युक्त होकर सदा मेरे इस मत का अनुसरण करेगा वह कर्म बन्धन से मुक्त हो जायेगा।

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।।

गीता- 18/71

जो पुरुष श्रद्धा युक्त और दोष दृष्टि से रहित इस ज्ञान का श्रवण भी करेगा, वह भी मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वाले पुण्यकारियों को शुभ लोकों को प्राप्त हो जाएगा।

गीता में बताया है कि बिना श्रद्धा किये हुए यज्ञ, तामस यज्ञ है। इसलिए अपने कार्यक्षेत्र में श्रद्धा के सहारे ही बढना चाहिए। श्रद्धा बैरी के हाथ से भी शस्त्र गिरवा देती है। श्रद्धा असम्भव को भी सम्भव बना देती है।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।

गीता- 17/28

बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान

और तपा हुआ तप अथवा जो कुछ भी किया हुआ कर्म है वह समस्त असत् है, व्यर्थ है। इसलिए हे अर्जुन! वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न परलोक में।

श्रद्धाहीन होने पर एक तो हमारे विकास का मार्ग रुक जाएगा और दूसरे हममें अहंभाव के विकार उत्पन्न होंगे। जो श्रद्धावान नहीं है उनका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी होगा। व्यक्तिवादी विचारधारा वाला सामाजिक नहीं हो सकता इसलिए व्यक्ति को समष्टि के हित में कर्मरत रहना चाहिए। सामाजिक भाव वाला ही सच्चा समाजसेवक हो सकता है।

श्रद्धा के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया–

''श्रद्धा जीवन विश्वास है। यह विश्वास किसी विनिमय अथवा आकर्षण से नहीं, चेतना के पर्दे उठने पर ही प्राप्त होता है। यथार्थ श्रद्धा के उदय होने पर हमें भीतर एक ऐसी प्रेरणा का अनुभव होगा जो आनन्दमय, मंगलमय और चिन्मय है।

''हम लोग अपने समाजसेवक में श्रद्धा न रखें तो समाज सेवक का प्रयास बेकार गया और हमारा श्रम भी व्यर्थ नष्ट हुआ इसलिए समाज सेवक को चाहिए कि वह समाज में अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न करे।''

संघ का हर स्वयंसेवक साधक है। साधक जब साधना पथ पर आगे बढता है तो उसका अनेक समस्याओं से सामना होता है। साधना मार्ग में नयी-नयी समस्याएँ आती रहती हैं और उनका सामना करते साधक कई बार ठोकर खाकर गिरता रहता है और नये-नये अनुभवों के साथ उठकर आगे बढता जाता है। साधना मार्ग में आने वाली समस्याएँ उस खुद को ही पार करनी होती है, दूसरों के भरोसे समस्याओं से पार नहीं जाया जा सकता। किसी पर भरोसा कर अपनी जवाबदेही नहीं छोड़ी जाती। दूसरों पर निर्भर रहने वाले का हेतु पूरा होने में सदैव संशय बना रहता है और यह निश्चित है कि देर सवेर उन्हें असफलता ही हाथ लगेगी। इसलिए साधक अपने आपको इतना योग्य बना ले कि कोई अपना उत्तरदायित्व छोड़ चला गया तो उसे भी यथासमय पूरा करने में समर्थ हो और इसके लिये पहला मंत्र है, अपने आप पर अटूट विश्वास हो, अपने भीतर अथक परिश्रम करने की क्षमता हो, साथ ही हृदय में श्रद्धा भाव परिपूर्ण हो। अपने स्वयं के निर्माण का यही अभिप्राय है, अपने निर्माण की यही प्रक्रिया है। अपना निर्माण करना अपने आप में कितना महत्त्वपूर्ण है, इसकी महत्ता बताते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा –

निज को न बनाया तो, जग रंच नहीं बनता।।

आगे कहा –

अपने आपको उठाना सारी कौम को उठाना है।
अन्धेरे में मुझे नई ज्योति दिखाना है।।

साधना मार्ग में अपने अनुभव साझा करते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया –

''विचारों की दृष्टि से अतीत से वर्तमान तक के मार्ग में मुझे कुछ परिवर्तन करने पड़े हैं और वे परिवर्तन कुछ ठोकरें खाने के बाद अनुभवों के आधार पर किये गये हैं जो मुझे उत्तरोत्तर सत्य की ओर प्रेरित होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

''सबसे पहला अनुभव मुझे हुआ कि समष्टिगत समस्त कर्तव्य व्यष्टि के निजी कर्तव्य हैं और उसमें किसी के सहयोग पर अपने उत्तरदायित्व को भूलना नहीं चाहिये। हमारा प्रिय से प्रिय व्यक्ति हमसे तटस्थ, यहाँ तक कि विरोधी हो सकता है। इसलिए मार्ग की साधना में किसी पर आश्रित न रहकर हठपूर्वक अपने आपका निर्माण करना चाहिए। अत्यन्त छोटी से लेकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात पर भी मतभेद हो सकता है और वह मतभेद विरोधी ही नहीं किसी को भी निष्क्रिय बना सकता है। पर समय ने मेरी आँख खोल दी, कि अपना कर्तव्य मुझे किसी के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए बल्कि अपने आपको इस योग्य बना लेना चाहिये कि हर जाने वाले की योग्यता की पूर्ति स्वयं द्वारा यथासमय कर ली जाए। श्रम से कोई भी सत्य असाध्य नहीं है इसलिए तुमने मुझे पहला पाठ पढाया है कि दुनिया में कर्मवीरों के लिये कोई भी वस्तु असम्भव नहीं है। श्रम ही वह कुंजी है जिससे श्रेय साधन के द्वार खुला करते हैं और इसी से दूर जाने वाला प्रायश्चित के आँसू भर कर वापिस लौट आता है।

''दूसरा अनुभव मुझे हुआ कि किसी भी प्रकार की क्रान्ति के लिये सभी प्रकार की भ्रान्ति का निवारण होना अत्यन्त अनिवार्य है। राजपूत समाज का कोई एक लक्ष्य नहीं रहा। सभी प्रयत्न भिन्न-भिन्न दिशाओं में होते रहे, परिणाम शून्य। सोचा यह जाता था कि येन-केन-प्रकारेण हमें तुमसे समझौता कर लेना चाहिये और अपना मन्तव्य सिद्ध होने पर फिर जैसा होगा कर लिया जायेगा, पर यह एक बहुत बड़ी भ्रान्ति सिद्ध हुई। हम समझौते से जीवन को दाव पर लगाना पसन्द नहीं करते। हम चाहते हैं भ्रान्ति से कोई समझौता नहीं किया जाए, अस्पष्टता को सर्वदा निर्वासित किया जायेगा तभी हमें सही रूप से मालूम होगा कि हम कहाँ जाना चाहते हैं और कहाँ जा रहे हैं। दूसरी भ्रान्ति थी प्रणाली की। मेरे वर्तमान समय! तुम्हारा लुभावना और मोहित करने वाला यह स्वरूप ही ऐसा है कि व्यक्ति चाहता है कि यदि मेरा इरादा नेक है तो मैं कुछ भी करूँ बुरा नहीं है, पर यह भी एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है। प्रकाश का उपार्जन प्रकाश सृजन करने वाले तत्वों से ही हो सकता है। अन्धकार की साधना से प्रकाशित होने की कल्पना ही मिथ्या हठधर्मी है। इसलिए बाहर भीतर की शुद्धि आवश्यक है और इसलिए लक्ष्य और मार्ग की अनुरूपता आवश्यक है। उपरोक्त दोनों ही प्रकार की भ्रान्तियों की मुझे बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ी किन्तु इसके अतिरिक्त भी कई भ्रान्तियाँ थी। साधक के सम्बन्ध में हमारा यह ख्याल था कि साधकों का पेट भरने के लिये राजा लोग राज महल छोड़कर भीख माँगते हुए जंगल-जंगल भटकेंगे। इस भ्रान्ति ने भी हमें अर्से तक भटकाए रखा। हर नये जादूगर को अवतार बताकर जय जयकार किया, पर आज यह भ्रान्ति भी मिट गई है। हमें अपनी तकदीर को अपने ही हाथों बनानी पड़ेगी। आज आकर्षण के स्थल दिखाई देते हैं लेकिन शनैः शनैः वे स्थल भी सभी को भ्रान्ति ही लगेंगे। जो अभी तक उपरोक्त भ्रान्तियों के चक्कर में है, आज भी राजमहलों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने में अपने आपको राजनैतिक जोड़-तोड़ करने में कुशल नीतिज्ञ मानता है, परन्तु समय ही बतायेगा, जैसा समय ने सदैव ही बताया है कि छत के सहारे कोई टिका रहने की आजीवन कल्पना नहीं कर सकता। यह भी एक भ्रान्ति थी कि सामान्य व्यक्ति कुछ नहीं कर सकते, कर तो केवल वही सकते हैं, जो राजा हैं या सेठ हैं, पर हकीकत यह है कि श्रम का कोई कण व्यर्थ नहीं जाता और जिनके कलेजे में चोट नहीं लगती वह चिल्लाने का चाहे जितना प्रयास करें वह उसकी क्रियाएँ रहेंगी अभिनय मात्र ही और कुछ नहीं। असहयोग होते हुए हे वर्तमान समय! तुम मेरे साथ हो, यह सिद्ध करने के लिये कि किसी भी प्रकार की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आध्यात्मिक क्रान्ति भ्रम को दूर भगाने से ही हो सकती है। सत्य के साक्षात्कार की वही एकमात्र और आवश्यक शर्त है।

''तीसरा अनुभव मुझे हुआ कि मनुष्य की प्रतिष्ठा किसी पद से बनाना बौद्धिक दासता क सृजन करना है। पश्चिम के अधिनायकवाद का पतन इसलिए हुआ, और होगा, कि पद पर किसी को प्रतिष्ठित कर उसे अत्रुट्य सिद्ध करने के पीछे बौद्धिक निर्बलता है और उस निर्बलता के दूर होने पर लोगों ने व्यक्ति और पद दोनों को उखाड़ फेंका। यद्यपि इस उखाड़ फेंक में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से परिस्थितियाँ ही कारण रही हैं फिर भी परिस्थितियों के सूक्ष्म कारणों में यही कारण हो सकता है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसके गुणों से ही होनी चाहिए और उस प्रतिष्ठा के सामने पद का स्थान अत्यन्त गौण है। इस सिद्धान्त को हजम कराने के लिये यद्यपि मुझे काफी परिश्रम करना पड़ा किन्तु आज तुम्हारे तोल जोख के बाद मुझे यह अनुभव होता है कि हर नया अनुभव कुल मिलाकर हमें विकास की ओर ही बढाता है।''

(क्रमशः)

जय वहीं होती है जहाँ पवित्रता और प्रेम है, दुनिया किसी कूड़े के ढेर पर नहीं खड़ी है कि जिस मुर्गे ने बांग दी वही सिद्ध हो गया।

– सरदार पूरणसिंह

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक - पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण-69

गंगा से भी अधिक पवित्र जिसकी गोद है, जिसके अमृत तुल्य दुग्ध पान से मेरे शरीर का अणु-अणु विकसित और शक्तिमान हुआ है, जिसके कोटि-कोटि उपकारों का मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है, वह मेरी परम पूज्या वृद्धा माँ समस्त वात्सल्य को हृदय की स्नेह-सरिता के वेग को पलकों के बन्ध से रोके हुए, अन्तिम विदाई देते हुए मेरी पीठ थपथपा रही है। कर्तव्य का आदेश मुझे रुकने नहीं देता, विवश हूँ माँ तेरी सुखद-शीतल गोद छोड़ने को।

पीठ थपथपाकर मात देती विदाय।
भारी हृदय से छोडूं गोद, करने स्वधर्म सहाय।।

इस अवतरण की चर्चा शुरू करने से पूर्व सुविज्ञ पाठकों से क्षमा याचना के साथ पुनः याद दिला दूँ कि मेरी साधना के अवतरणों की चर्चा या उसके बारे में कुछ भी लिखने की मेरी योग्यता अथवा क्षमता नहीं है। मात्र प्रवीणसिंह जी सोळिया (सम्पादक पथ प्रकाश प्रेरणा) की इच्छा को मान देते हुए जैसा-वैसा लिखने का प्रयास करता हूँ। त्रुटियों, कमियों को उदारता से सहन कर मुझे आभारी बनाएँ।

एक समय था, जमाना था जब समर प्रयाण करते हुए वीर को माता, पत्नी, बहन हंसते मुख से विदा देती थी। विदा की वेला में सीख देते हुए माता कहती थी-'मेरी कोख उजालना', पत्नी स्वयं को गौरव प्राप्त हो ऐसा पराक्रम करने को कहती थी, बहन अपने भाई को कुलदीपक बनने के लिये कहती। वह समय, वह जमाना गुजर गया। आज इस योद्धा (साधक) को अलग प्रकार के कर्मक्षेत्र के मैदान में उतरना है। जो पहले वाले युद्धों से अधिक गहरा, कठिन व कष्टसाध्य है।

साधक माता का उपकार, ऋण कितना और किस प्रकार का है वह समझाते हुए कहता है-'मेरी परम पूज्य वृद्धा माँ समस्त वात्सल्य को, हृदय की स्नेह सरिता के वेग को पलकों के बन्ध से रोके हुए अन्तिम विदाई देते हुए मेरी पीठ थपथपा रही है।' इस वाक्य को किस रूप से समझूं और समझाऊँ वह मुझे सूझता नहीं है। पुत्र की ओर माता की ममता, प्रेम, लगाव कैसा होता है, इसका वर्णन नहीं हो सकता, यह तो अनुभूति का विषय है।

हमारी साधना सामाजिक क्षेत्र की साधना है। एक युवक समाज की अधोगति, बद्हालत देखकर दुखी होकर, समाज के पुनरोत्थान के लिए, समाज के चरणों में अपना समस्त जीवन समर्पण कर देने के संकल्प के साथ माता से विदाई मांगता हो तब एक क्षत्राणी माता पुत्र के प्रति सभी भावों को अन्तर में छिपाकर, पुत्र की पीठ थपथपाकर विदाई देती है, उस दृश्य को शब्द देह देकर दिखा नहीं सकते। इस अवर्णनीय, अद्भुत और करुण प्रसंग पर पुत्र (साधक) जब कहता है-माँ! 'कर्तव्य का आदेश मुझे रुकने नहीं देता, लाचार हूँ माता! तेरी यह सुखद गोद छोड़ने के लिये।' यह कोई वाणी विलास नहीं है। सत्य घटना है। ऐसे जीवित पात्र समाज में (संघ में) काम करते हैं, जिन्होंने माता की सुखद गोद त्यागी हो, प्राणप्रिया के प्रणय को ठेस पहुँचाई हो। आज का क्षत्रिय युवा ऐसे पात्र के जीवन से कुछ प्रेरणा पाने की सोचता है? इसका उत्तर हाँ हो तो कौम का भविष्य उज्ज्वल है। अगर उत्तर ना हो तो कुछ नहीं कहना है। इसके साथ-साथ अपनी महिलाओं की मनोदशा के बारे में भी थोड़ा सोचें। मान लें कि कोई युवक समाज के लिए जीवन देने की तैयारी के साथ माता, पत्नी के पास अनुमति माँगे, विदाई मांगे तो परिवार में कैसे वातावरण का सृजन होगा? कल्पना कर सकते हैं?

शिक्षा का प्रचार-प्रसार खूब बढा है। शिक्षा ही जीवन की सफलता का आधार है, ऐसी मान्यता के आधार पर महिलाओं में भी शिक्षा बढी है। क्षेत्र का अनुभवी तो

कहता है, लड़कों से भी लड़कियाँ पढने में अव्वल हैं। ऐसा शिक्षण पाने के बाद महिलाओं की मानसिकता बदलेगी या नहीं यह कहना मुश्किल है। शिक्षा के साथ उनमें समझदारी बढे ऐसी कोई सामाजिक व्यवस्था नहीं है। लेकिन श्री क्षत्रिय युवक संघ बालिकाओं के लिए, महिलाओं के लिये तीन, पाँच, सात दिन के प्रशिक्षण शिविर आयोजित करता है। उनकी समझदारी बढे, कर्तव्य बोध हो, इस प्रकार की शिक्षा शिविरों में दी जाती है। धार्मिक भाव बढे, सामाजिक भाव बढे, परोपकारी वृति का विकास हो, माता, पत्नी, बालिका, ननद-भोजाई, देवरानी-जेठानी और सास-बहु के बीच आदर्श व्यवहार के चित्र उनके सामने रखे जाते हैं। जिससे उनमें जिम्मेवारी, समझदारी क्या है उसका ख्याल कर अपने गृह संसार में आदर्श व्यवहार द्वारा परिवार के सदस्यों में वे आदर की पात्र बनें। शिक्षण के साथ 'माता निर्माता भवति' सूत्र द्वारा भावी संतान का पालन कैसे करें, उन्हें अच्छे संस्कार कैसे दें ताकि वे समाज के भावी सूत्रधार बनें, इस बारे में महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक बातें बताई जाती हैं। जिसके फल हमारी भावी पीढी को प्राप्त होंगे।

पाठक बन्धुओं! आपके क्षेत्र में ऐसा शिविर आयोजित कर बालिकाओं को शिक्षण देने का भाव जगे तो आप श्री क्षत्रिय युवक संघ से सम्पर्क करें। जाति के उत्थान के लिये ऐसा शिक्षण बालिकाओं को मिले यह महत्त्वपूर्ण व आवश्यक है। ऐसी शिक्षित महिलाएँ ही समाज में नवचेतना जगायेंगी। ऐसा जिसे विश्वास हो वह अपने क्षेत्र में शिविर आयोजित करके पुण्य कमा लें, ऐसी प्रार्थना। अन्त में परमेश्वर हमें नारी जागृति के लिये प्रयास करने की प्रेरणा दे ऐसी प्रार्थना के साथ जय संघशक्ति।

अर्क- समाज में जन्मदाता माता की अवहेलना और काल्पनिक भ्रमणा का बोलबाला दिखाई पड़ता है।

अवतरण-70

मुझमें उनकी सब आशाएँ केन्द्रीभूत हो निवास करती हैं। मैं उनकी वृद्धावस्था का सहारा, जीवन का सर्वस्व हूँ। वे मेरे परमपूज्य पिताजी अपने हृदय की पवित्रता के साथ मुझे अन्तिम विदाई का आशीर्वाद देने इधर आ रहे हैं। वे क्या आज्ञा देंगे जानता नहीं, पर इतना तो जानता हूँ कि कर्तव्य की आज्ञा सब आज्ञाओं से अधिक पालनीय है।

मार्ग कर्तव्य का अतिमुश्किल।
पितृ ऋण को भी गौण भासता।।

इस अवतरण में पिता से विदाई की बात कहते, बहुत कुछ न कहते हुए भी कह देते हों ऐसा लग रहा है। भावना से ऊपर उठकर जो कुछ कहा जाए वह गूढ, महत्त्वपूर्ण और आवश्यक हो सकता है, अगर पढना और समझना आता हो तो।

पुत्र को जन्म दिया, बड़ा किया, पढाया-लिखाया। अच्छी शिक्षा से इंजीनियर, डॉक्टर, वकील या प्रोफेसर पद प्राप्त करने के बाद लड़का उस पद या डिग्री का उपयोग करने के बजाए कहता है कि मुझे तो समाज सेवा करनी है, समाजोत्थान का काम करना है। समाज आज अपने कर्तव्य, उत्तरदायित्व को त्याग कर क्षत्रिय की महत्ता घटा रहा है। उस समाज को कर्तव्य-राह पर लाने के लिये मुझे अपना संपूर्ण जीवन अर्पण करना है। ऐसा कहता है तब जिनकी वृद्धावस्था का एकमात्र आधार पुत्र हो उन माता-पिता को पुत्र का यह निर्णय कैसा लगेगा? साधक के कथन के अनुसार तो पिता अपने हृदय की पवित्रता से विदाई देने में सहमत हैं। यह कोई कल्पना नहीं सत्य घटना है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक पू. तनसिंहजी ने वकालत करने के पश्चात् जब संघ कार्य प्रारम्भ किया तब उनके पिताश्री तो जीवित नहीं थे, परन्तु पवित्र गंगा स्वरूप पूज्य माँसा ने हृदय के पवित्र भाव से अपने एकमात्र पुत्र के निर्णय को सहर्ष स्वीकार किया।

आज समाज में कोई पदाधिकारी पुत्र अपने माता-पिता से ऐसी समाज सेवा या राष्ट्रसेवा की प्रार्थना करेगा तो माता-पिता के दिल में कैसे भाव उठेंगे? अनुभव के आधार पर कोई विचारशील महानुभाव अगर उत्तर दे सके तो सामाजिक मानस का थोड़ा आभास हो सके। परन्तु हमको तो पढने की भी फुर्सत नहीं मिलती फिर समाज के मानस को पढने की बात ही कहाँ रही? ठीक है न!

साधक कहते हैं पिताजी क्या आज्ञा देंगे यह मालूम नहीं, किन्तु कर्तव्य की आज्ञा से विशेष कोई आज्ञा हो ही नहीं सकती। मनुष्य के लिये, मनुष्य नहीं क्षत्रिय के लिये तो क्षात्रधर्म पालन से अधिक कोई बड़ा धर्म नहीं है। कोई आज्ञा नहीं है।

यह कर्तव्य, उत्तरदायित्व क्या है? कोई समझायेंगे? जैसे मयूर अपनी पंखों में शोभित होता है, वैसे ही क्षत्रिय अपना कर्तव्य, अपना उत्तरदायित्व निभाने से शोभायमान होता है। मयूर की पांखें झड़ जाएँ उस समय मयूर कैसा प्रभावहीन, अरूप लगता है वह हम सब जानते हैं, हमें अनुभव है।

क्षत्रिय के उत्तरदायित्व के पंखों की पहचान है- उदारता, वीरता, धीरता, तप, त्याग, बलिदान, प्रेम, परोपकार, दया, रंक-रक्षा जैसी अगणित पांखें हैं जो क्षत्रिय के क्षात्रत्व को शोभायमान करती हैं। जैसे मयूर अपनी पांखों के बिना, उसी तरह क्षत्रिय अपनी गुण रूप पांखों के बिना प्रभावहीन, अरूप और बुरा लगता है। हम अपनी इन पांखों के बारे में जागृत रहकर सोचें। क्षत्रिय कोई जाति वाचक संज्ञा नहीं है। यह गुण वाचक संज्ञा है। गुण न होने पर संज्ञा लुप्त हो जाती है। जैसे अग्नि में उसके गुण ताप, प्रकाश और दाहकता न हो तो उसकी संज्ञा बदल जाती है, और राख की संज्ञा दी जाती है। बुझी हुई अग्नि को खाक कहते हैं। ऐसे ही वृक्ष का गुण फल, छवि अगर छूट जाता है तो उसे वृक्ष की बजाए ठूंठ कहते हैं।

हम सब जगें, हमारी क्षत्रिय संज्ञा बदल न जाए उसके लिये पुरुषार्थ करें। कर्तव्य की राह पर चलें। क्षात्रत्व को दीपित करें। क्षत्रिय संज्ञा सार्थक करें। परमेश्वर से प्रार्थना करें कि हमें क्षत्रिय संज्ञा को सार्थक करने का भाव, सोच, सामर्थ्य और समझदारी दें।

अर्क- बहती सरिता ही लोक कल्याण कर सके।

अवतरण-71

समर-भूमि निमंत्रण दे रही है। तो चलूँ इन स्वजनों से गले मिल लूँ, अन्तिम विदा की वेला जो आ पहुँची। स्नेह सिंचित स्नेह-लता सी मेरी छोटी बहिन मेरे मुँह में मांगलिक गुड़ देने आई है। उसके बांये हाथ में तरल कृपाण है जो वह स्वयं मेरी कमर में बाँधेगी। बहिन! तुम्हारे नेत्रों से प्रवाहित यह स्नेह-जल-राशि मेरे कर्तव्य-पथ को धोकर सदैव निर्मल और पवित्र करती रहे।

कमर में बाधं कृपाण, मुख में दे गुड़, विदाई दे बन्धु को।

समर भूमि निमंत्रण दे रही है। कौनसी समर-भूमि? किस युद्ध मैदान की साधक बात कर रहे हैं? समझ में आता है? हमारे सामाजिक क्षेत्र में प्रविष्ट अनिष्टों-कायरता, कृपणता, स्वार्थ, द्वेष, ईर्षा, एकता का अभाव, भ्रम, रूढियाँ, अन्धश्रद्धा जैसे दुश्मन-दूषणों के सामने लड़ने के लिए समर-भूमि निमंत्रण दे रही है। तब ऐसे अनिष्टों के सामने जीवनभर लड़ने का निश्चय कर अडिग योद्धा अपने माता-पिता से विदा लेने के बाद अपने स्वजनों से अन्तिम विदा लेने के निर्णय के साथ अपनी स्नेहमयी छोटी बहिन को मिलने जाता है। उस समय बहिन भाई का मुँह मीठा कराने हाथ में गुड़ लेकर आती हुई मालूम पड़ती है। हमारे यहाँ यह परम्परा है कि जब परिवार का सदस्य लम्बी यात्रा पर जाता है तो उसे विदा देते समय मुँह मीठा करवाते हैं। पहले के जमाने में युद्ध करने जाते अपने भाई को बहिन मुँह में गुड़ देकर, कमर पर कृपाण बांध कर विदा के साथ शुभाशीष देती और कहती-वीरा! माँ की कोख उज्ज्वल करना, कौम का गौरव बढाना। आज मरने-मारने के युद्ध लड़ने नहीं जाना है किन्तु सामाजिक क्षेत्र में इष्ट और अनिष्ट के बीच सतत् खींचतान चल रही है और चलती रहेगी। प्राचीन काल में युद्ध के समय 'रीड पड़े रजपूत छुपे नहीं' उक्ति के अनुसार अपनी कौम को राजपूत कहलाने वाले सभी युद्ध मैदान में पहुँच जाते थे। जबकि आज इस सामाजिक क्षेत्र के युद्ध में स्वाहा होने वाले विरले ही मिलते हैं।

मेरी साधना का साधक सामाजिक अनिष्टों के सामने लड़ने का संकल्पधारी, वीरव्रतधारी योद्धा है। विदा-वेला में बहिन को क्या कहता है-यह जानना, समझना हमारे लिये आवश्यक है, फिर भी आँख-कान बन्द कर इसकी उपेक्षा करते हों ऐसा वातावरण देखने को मिलता है। विदा वेला में बहिन की आँख में प्रेमाश्रु देख साधक योद्धा बहिन को

कहता है-'बहिन! तुम्हारे नेत्रों से प्रवाहित यह स्नेह-जल-राशि मेरे कर्तव्य-पथ को धोकर सदैव निर्मल और पवित्र करती रहे।' कहने का तात्पर्य है मैं सामाजिक क्षेत्र में समाज के शत्रुरूप अनिष्टों के सामने लड़ने जाता हूँ, तब मेरा कर्तव्य पथ स्वार्थवश, लोभवश, अहंकार वश अपवित्र व गंदा न बने, विदा वेला पर तेरे प्रेमाश्रु की याद इस मार्ग को धोकर सदैव पवित्र और निर्मल रखेगी।

साधक अन्तिम विदा वेला पर कैसे भावयुक्त, लगाव भरे और स्नेह भरे प्रसंग का वर्णन करता है। पत्थर दिल मानवी के मन को मोम बना दे वैसे प्रसंग का आलेख कर साधक कुछ संकेत, कुछ आदेश देना माँगता हो, ऐसा लग रहा है। इस वातावरण के सम्बन्ध में क्या चर्चा करें? क्या कहें? क्या लिखें? असमंजस खड़ा हो रहा है।

कर्तव्य पथ को पवित्र और निर्मल रखने का संकल्प हमारे मन को पवित्र और निर्मल बनने की प्रेरणा और बल देता है। हम उसे स्वीकार करें। स्वीकार करने से अनिष्टों का संग्रह करने वाला मन भी पवित्र और निर्मल बनकर दुश्मन दल को दुत्कार कर समाज में स्वच्छता, सुंदरता, सदाचार, सद्चरित्रता, एकता और संगठन का माहोल बना सके। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्।

खेद की बात है कि आज जन समूह में पवित्र और निर्मल जैसे शब्द वाणी से विदा हो गए हैं। व्यवहार से लुप्त हो गए हैं। ऐसे मुश्किल समय पर हम अगर मेरी साधना के अवतरणों से थोड़ा-बहुत बोध लेंगे तो हमारी अकर्मण्यता, हमारी निराशा, हमारी स्वार्थवृत्ति कुछ अशों में कम होगी और थोड़ा-बहुत सामाजिक भाव अवश्य विकसित होगा।

अन्त में सुविज्ञ पाठकों से एक सीधा प्रश्न पूछता हूँ। डर लगता है, फिर भी मेरी साधना के साधक-योद्धा के प्रेरणादायी प्रसंगों से प्रेरणा लेकर, हिम्मत जुटाकर पूछ ही लेता हूँ। अन्य वर्ग (जाति) के लोग 'मेरी साधना' का जो मूल्य समझता है, वैसा हम समझ पाते हैं? यदि उत्तर 'हाँ' हो तो समाज सद्नसीब है।

मेरी साधना के अवतरणों को अच्छी तरह से समझने की, उनका मूल्यांकन करने की परम कृपालु परमात्मा हमको समझ और शक्ति दे, ऐसी प्रार्थना सहित 'जय संघशक्ति'।

अर्क- श्रद्धा का टिमटिमाता दीपक, आशा का झल-झलता सूरज बने।

चिंतन मोती- क्रोध ऐसा बारूद का गोला है जो दूसरों को जलाने से पहले अपने को ही जला देता है। क्रोध में मनुष्य अंधा हो जाता है। उसकी आँखें लाल और चेहरा विकराल बन जाता है। बार-बार क्रोध करने से बुद्धि के तंतु-तार जल जाते हैं और मनुष्य पागल बन जाता है। इसलिए क्रोध न करें!

अवतरण-72

मेरी छोटी मुन्नी मचल गई, गोदी से उतरती भी नहीं। मुन्ना पैरों में लिपट गया और कहता है-''मैं भी तलूंगा।'' उन्हें कैसे समझाऊं समर-भूमि की विकरालता? बड़ी बच्ची खिलौना लाने के लिये कह रही है। हाँ, लाऊँगा तेरे लिये खिलौना, शत्रुओं के मुण्डों से खेलेगी न तू! कर्तव्य राह पर कठिन परीक्षा है यह मेरी। देव, उत्तीर्ण करो!

पुत्र, पुत्री के स्नेह को ठोकर मारते हुए।
हृदय हिल जाय, है क्षात्रधर्म की क्रूरता।।

इस अवतरण के शब्द चित्र को कोई चित्रकार अपनी तुलिका से चित्र बनाकर प्रस्तुत करे तो वह चित्र हृदय हिला दे, आँखों से आँसू टपक पड़ें ऐसी करुणा, व्यथा, दया उपजा दे। ऐसा कल्पना द्वारा मान सकते हैं।

साधक समर-भूमि प्रयाण की अन्तिम वेला पर स्वजनों को भेंट करने के क्रम में अपनी स्नेहमयी छोटी बहिन से भेंट कर विदाई लेने के बाद अपनी लाडली संतानों से विदाई की वेला का वर्णन करता है। छोटी लाडली पुत्री पिता के गले लग जाती है। तुतलाती बोली बोलता छोटा पुत्र पाँवों में लिपटकर कहता है-मैं भी चलूंगा, बड़ी पुत्री अपने खेलने के लिये खिलौन ले आनेको कहती है।

जो साधक, जो योद्धा, जो वीर अपने छोटे से परिवार का भार, उत्तरदायित्व छोड़कर समाजरूपी विशाल परिवार का उत्तरदायित्व वहन करने हेतु परिवार छोड़कर विदाई लेता है, उस समय उसके परिवार के सदस्यों के दिल में कैसा-कैसा भाव उमड़ता होगा, प्रकट होता होगा, उसकी कल्पना बड़े-

बड़े वीरों को भी हिला देती है। मेरी साधना का साधक जब संकल्पबद्ध, हर्ष-शोक रहित, राग-द्वेष से ऊपर उठकर हंसता हुआ विदा ले रहा है तो स्थितप्रज्ञ का दर्शन कराता है। स्थितप्रज्ञ साधक कैसा हो, उसका दृष्टान्त यहाँ मिलता है।

गत अवरण में बताया गया था कि यह समर-भूमि सामाजिक क्षेत्र है। समाज के अरिदल (अनिष्टों) को संहारने के लिए जीवन भर जूझना है। अरिदल बड़ा है, शक्तिशाली है। साधक अकेला है। बहुत कम साथियों, सहयोगियों को साथ लेकर बेकाबू बनी हुई शत्रु सेना के साथ भिड़ना है। असुर सेना मजबूत है। इस एक जन्म में उसे परास्त न भी कर सके, तो दूसरे जन्म में भी उसके साथ लड़कर उसे परास्त करने के दृढ संकल्प और मनोबल के साथ साधक रण-मैदान में विजय के विश्वास के साथ उतरता है। यह कोई कोरी कल्पना नहीं है, सत्य है। इस सत्य को समझने के लिये सबसे पहले समय का भोग देना पड़ता है, समाज के इतिहास का अध्ययन करना पड़ता है। इसके बाद कदाचित यह सत्य थोड़ा समझ में आए। दुर्भाग्य से हम समय देने की उदारता खो बैठे हैं। समय देने के बारे में हम कृपण बन गये हैं, ऐसा अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है।

समय न दे सकें तो सत्य को पाना और समझना कठिन ही नहीं असम्भव बन जाए। समाज का बहुत बड़ा वर्ग ऐसा मानकर चलता है कि वे अपने समय का सदुपयोग करते हैं। हम अच्छी तरह कमाते हैं, अच्छे ढंग से जीते हैं। फिर हमको सामाजिक क्षेत्र में समय बर्बाद करने की क्या आवश्यकता है? यह कथन हमारी मानसिक कंगाली, संकुचितता का प्रदर्शन है। हम स्वार्थी, व्यक्तिवादी बन गए हैं। संभव है कि समाज को गौण, अनावश्यक मानकर निम्न कक्षा में स्थान देते हैं। ऐसा क्यों? कारण स्पष्ट होने के बाद भी अपनी नशीली आँखों से इस ओर नजर डालने की फुर्सत नहीं है। या फिर हम आँख, कान बन्द रखकर स्वार्थ, भोग, वैभव-विलास में रत हैं। हमारे इस हाल के लिए ही कही गई हो ऐसी पंक्तियाँ याद आती हैं -

भोग विलास और वैभवी जीवन में, सेवा संयम भूले भड़।
सत बिसर गये शैतानी संगत में, स्वार्थ की जम गई जड़।।

क्षत्रिय के अस्तित्व की नींव है त्याग, तप, सेवा, संयम। ऐसे उत्तम गुणों से हम दूर हो गये हैं। या ये गुण हमको छोड़कर चले गए। परिणामस्वरूप समाज में हमारी कीर्ति, यश, उज्ज्वल परम्पराओं, परोपकारी जीवन को समाप्त करने वाले अनिष्टों के झुण्ड के भोग बनकर अपनी क्षत्रिय संज्ञा गुमाकर बैठे हैं, ऐसा समाजशास्त्रियों, समाज चिंतकों का मन्तव्य है।

अनिष्टों के झुण्ड को नेस्तनाबूद करने, क्षात्र संज्ञा को सार्थक करने के लिए समर प्रयाण करने से पहले मेरी साधना का संकल्पबद्ध साधक, योद्धा, स्वजनों से विदाई के प्रसंग का वर्णन करके हमको, क्षत्रिय समाज को परोक्ष रूप में, सूक्ष्म रीति से महाबोध प्रदान करने का पुण्य कार्य करता है, ऐसा हम मूल्यांकन कर सकें।

साधक खिलौना माँगने वाली बड़ी पुत्री से कहता है,-हाँ लाऊँगा तेरे लिए खिलौना, शत्रुओं के मुण्डों से खेलेगी न तू? किस शत्रु का शीश? साधक के सामने कोई देहधारी शत्रु नहीं है। किन्तु दोष रूप, अनिष्टों रूपी शत्रु के शीश काटकर लाना, अर्थात् उसको जड़ सहित नष्ट करना। बाद में समाज में आनन्द-मंगल, सुख-शान्ति, सहयोगी जीवन का भाव, संगठन से क्षात्रत्व का उपवन खिल उठे। फिर क्या चाहिए? फिर 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'। साधक स्वजनों की विदाई की करुण वेला में परमेश्वर से प्रार्थना करता है-कर्तव्य राह पर कठिन परीक्षा है यह मेरी। देव उत्तीर्ण करो।

हम भी परमात्मा से प्रार्थना करें-धर्म के कंटकाकीर्ण मार्ग पर भले ही धीमे किन्तु चलने का बल, हिम्मत और समझ दो।

अर्क- जगत क्षात्रत्व के अभाव में विनाश को न्योता दे रहा है।

(क्रमशः)

इस सृष्टि का सत्य तर्क नहीं कर्म है, सत्य और धर्म दोनों ही का बहाव कर्म की उपत्यका के भीतर ही मिल सकता है।

- लक्ष्मीनारायण मिश्र

गतांक से आगे

महान क्रांतिकारी-राव गोपालसिंह खरवा

- ले. सुरजनसिंह झाझड़, संकलन व सम्पादन-डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

संकट-काल-देश में क्रान्तिकारी पकड़े जा रहे थे। उनमें से अनेक पुलिस-यातनाएँ सहने में असमर्थ, सरकारी गवाह बनते जा रहे थे। राव गोपालसिंह के अक्खड़पन और निर्भीक आचरण से जिले के अंग्रेज अधिकारी प्रारम्भ से ही परिचित थे और वे सदैव उनसे असंतुष्ट बने रहते थे। बारहठ केसरीसिंह की गिरफ्तारी (सन् 1914 ई.) हो चुकी थी। रव गोपालसिंह अजमेर-मेरवाड़ा के प्रथम श्रेणी के ताजीमी सरदार थे। मगरा-मेरवाड़ा में वे इतने अधिक लोकप्रिय थे कि वहाँ की जनता उनकी एक आवाज पर मरने-मारने को उद्यत हो सकती थी। राजपूताना के एक अर्द्ध स्वतंत्र शासक को राजद्रोह के अपराध में बन्दी बनाने का यह अवसर था। यहाँ के राजा-महाराजाओं, सामन्त सरदारों एवं स्वाभिमानी राजपूतों में उनके उक्त कदम की क्या प्रतिक्रिया हो सकती है, उसकी संभावनाएँ भी उनकी नजर में थी।

अंग्रेज जर्मनी के साथ जीवन मरण के युद्ध में लिप्त थे। इसी हेतु चार महीनों के लम्बे समय तक उपर्युक्त सब पहलुओं पर गंभीरता से विचार करने के पश्चात् अंग्रेजों के दिल्ली स्थित राजनैतिक विभाग ने राव गोपालसिंह को भारत-रक्षा कानून- (Defecne of India Act) के तहत 21 जून, 1915 को अजमेर के कमिश्नर ए.टी. होम ने बन्दी बनाने का आदेश दिया। 28 जून, 1915 की शाम को राव गोपालसिंह ट्रेन द्वारा खरवा से ब्यावर पहुँचे। उसी रात घोड़ों की बग्गी द्वारा टॉडगढ के लिए रवाना हो गये। राव गोपालसिंह को दिनांक 28 जून को निश्चित समय पर टॉडगढ़ पहुँचना था किन्तु वे दिनांक 29 जून को प्रात: वहाँ पहुँचे। जब वे टॉडगढ़ पहुँचे खिदमतगार (सेवक) और निजी (सहायक) कुल 15 व्यक्ति उनके साथ थे। टॉडगढ़ के तहसीलदार की रिपोर्ट 30 जून, 1915 के अनुसार राव गोपालसिंह के साथ 22 शस्त्रास्त्र एवं भारी मात्रा में कारतूस एवं गोला-बारूद था। कमिश्नर ने टॉडगढ़ स्थित सभी सरकारी अधिकारियों के नाम एक निर्देश पत्र भेज दिया था जिसमें लिखा था खरवा के ठाकुर के टॉडगढ़ निवास के समय उनसे तथा उनके आदमियों से किसी भी प्रकार का औपचारिक सम्बन्ध न रखें। (अजमेर दिनांक 6 जून, 1915)

कंटीली सघन वृक्षावलियाँ से आच्छादित अरावली पर्वतमाला के एक उच्च शिखर पर स्थित टॉडगढ़ मगरा-मेरवाड़ की सामरिक कुंजी है। सन् 1820 ई. (वि.सं. 1877) में यहाँ के शौर्यवान लोगों पर प्राप्त विजय के उपलक्ष्य में-मेवाड़ के तत्कालीन अंग्रेज रेजिडेंण्ट कर्नल जेम्स टॉड के नाम पर सामरिक महत्त्व के इस स्थान पर टॉडगढ़ का निर्माण किया गया था। टॉडगढ़ का पूरा इलाका क्षेत्र एवं जंगल राव गोपालसिंह का देखा हुआ था। इस प्रकार कई घटनाएँ घटित हुई जिसमें-खरवागढ़ का घेराव, राव गोपालसिंह फरार, मोड़सिंह भवानीपुरा को साथ लेकर नजरबंदी आदेश की अवज्ञा करते हुए राव गोपालसिंह नजरबन्दी स्थान से निकल पड़े। शेर बंधन तोड़कर पिंजड़े से निकल चुका था। टॉडगढ़ स्थित तारघर पहुँचे। वायसराय एवं राजपूताना के ए.जी.जी. को उन्होंने तार दिए (10 जुलाई, 1915)। मेवाड़ की सीमा पर स्थित ''बरार'' गाँव की तरफ ठाकुर के जाने की सूचना मिली। उनको बन्दी बनाने का प्रयास किया गया एवं खरवा शस्त्रागार के तमाम हथियार एवं खजाने में रक्षित जवाहरात जब्त कर लिए गए। उदयपुर महाराणा ने भी अंग्रेज सरकार का साथ दिया। पिपलाज से मोड़सिंह ने अच्छी नस्ल का ऊँट (खरण) खरीदा, राव गोपालसिंह ने घोड़ों को छोड़ा और मेवाड़ से निकलकर जयपुर और टोंक राज्यों के गाँवों से होते हुए वे किशनगढ़ राज्य में चले गये। किशनगढ़ राज्य की पश्चिमोत्तरी सीमा जोधपुर राज्य

के परबतसर परगने से मिलती है। परबतसर परगने का ''रोहण्डी'' कस्बा किशनगढ़ राज्य की सीमा से लगता है। रोहण्डी सुरताणोत मेड़तियों का एक प्रतिष्ठित ठिकाना था। वहाँ के ठाकुर राव गोपालसिंह के अभिन्न मित्र और विपत्तिकाल में साथ देने वाले साथी थे। उसी परगने में स्थित बड़ू, बूडसू, बोरावड़, जावला, भखरी आदि ठिकानों के मेड़तिया ठाकुर राव गोपालसिंह के मित्रों एवं समर्थकों में अग्रण्य थे। सीटावट, गुढ़ा, भैरूंदा आदि गाँव खरवा के भाई बाँधव सगतसिंहोत जोधों के जागीरी गाँव थे और रोहण्डी से बिल्कुल समीप ही थे।

राव गोपालसिंह के वहाँ पहुँचने से पूर्व ही सवाईसिंह ततारपुरा ने रोहण्डी ठाकुर से मिलकर उनके भूमिगत रहने के स्थान का प्रबन्ध कर लिया था। रोहण्डी के जंगल और पहाड़ों के बीच ठिकाने की रक्षित शिकारगाह थी, जिसे रोहण्डी का माला कहते थे। वहाँ शिकार जाने पर विश्राम हेतु दो चार मकान बने हुए थे, वहाँ गोपालसिंह को ठहराया गया था। **सलेमाबाद मंदिर में राव गोपालसिंह घिरे–** पूर्व किशनगढ़ राज्य का सलेमाबाद कस्बा राठौड़ों के लिए पूज्य धार्मिक स्थान है। वहाँ पर निर्मित श्री राधा-कृष्ण का भव्य मंदिर राठौड़ों का गुरुद्वारा माना जाता है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के गोस्वामी वहाँ के महन्त और पुजारी हैं। मन्दिर विशाल और सुदृढ़ बना हुआ है। उसकी बनावट एक अच्छे खासे गढ़ की मानिन्द है। गढ़ की भाँति ही उसका ऊँचा प्रवेश द्वार है। ऊँची प्राचीरें हैं और उनके चारों कोनों पर बुरजें बनी हुई हैं। यह पहले खेजड़ला ठाकुर का गढ़ था जिसे उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय की पीठ बनाने हेतु प्रदान किया था। एक दिन राव गोपालसिंह को सलेमाबाद जाकर भगवद्-श्रीविग्रह के दर्शन करने की इच्छा हुई। अपनी सवारी के ऊँट को सलेमाबाद से जंगल में एक खेजड़ी के बाँधकर मोड़सिंह भवानीपुरा को साथ लिए राव गोपालसिंह पैदल ही गाँव में गए और मन्दिर में प्रवेश किया। मन्दिर के प्रवेश द्वार के बाहर बैठे व्यक्तियों में एक व्यक्ति पुलिस के खुफिया विभाग का था। उसने राव गोपालसिंह को पहचान लिया कि यही राव गोपालसिंह है। इसी बीच उस व्यक्ति ने मन्दिर के प्रवेश द्वार के फाटक रात में बन्द हो जाने पर जब यह सुनिश्चित हो गया की राव गोपालसिंह अन्दर ही है, अतिशीघ्र-किशनगढ़ एवं अजमेर खबर पहुँचा दी। राज्य के दीवान के.एन. पवनास्कर लगभग सौ घुड़सवारों के साथ प्रातःकाल से पूर्व ही सलेमाबाद पहुँचे और टेलीग्राम से अजमेर कमिश्नर को राव गोपालसिंह को घेर लेने की सूचना भेज दी। ए.जी.जी. राजपूताना के सेक्रेट्री और इन्सपेक्टर जनरल पुलिस मि. केई (Keye) तत्काल पुलिस दल के साथ सलेमाबाद पहुँच गए। नसीराबाद सैनिक छावनी के 500 सैनिक मेजर कूपलेण्ड और ग्रीन फील्ड की कमाण्ड में मि. केई के साथ थे। डीग और भरतपुर के किलों के घेरे के पश्चात् अब फिर एक राजपूत को गिरफ्तार करने हेतु अंग्रेज हुकूमत को एक बड़े सैन्य प्रदर्शन के आयोजन की आवश्यकता पेश आई। 26 अगस्त, 1915 ई. का दिन था वह। गोपालसिंह को शस्त्रों सहित-समर्पण के लिए कहा गया था, परन्तु उन्होंने इनकार कर दिया। दुबारा वार्तालाप हुआ, अतः तय किया गया कि सरकार राव गोपालसिंह से शस्त्र न लेगी, किन्तु वे अपने पास के शस्त्र मंदिर में विराजमान श्री ठाकुर प्रतिमा के भेंट चढ़ा देंगे, जो मन्दिर की सम्पत्ति मानी जावेगी। उन्हें वहाँ से हटाने का किसी को भी अधिकार नहीं होगा। मंदिर में हुए वार्तालाप के समय राव गोपालसिंह ने इच्छा प्रकट की थी कि उनके वचनों पर विश्वास करके मि. केई घेरा उठाकर अजमेर चले जावें तथा वे स्वयं दूसरे दिन सुबह किशनगढ़ से रेल द्वारा अजमेर पहुँच जावेंगे। मि. केई ने राव गोपालसिंह की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही उनके वचनों पर भरोसा करते हुए घेरा उठाना स्वीकार कर लिया। मि. केई ने अपने हृदय ही महानता एवं विवेकशीलता का परिचय दिया। राव गोपालसिंह ने भी उसी शाम अपने पास के शस्त्रास्त्र विनीत भाव से ठाकुर प्रतिमा के सन्मुख समर्पित कर दिए। वे शस्त्रास्त्र अद्यावधि सलेमाबाद मंदिर की सम्पत्ति हैं, किन्तु इनमें से चार शस्त्र सन् 1962 में सरकार ने हटा दिये।

27 अगस्त, 1915 को प्रात: किशनगढ़ पहुँचकर, वहाँ से रेल द्वारा राव गोपालसिंह अजमेर पहुँचे। भारत रक्षा कानून के तहत नजरबन्दी तोड़ने के अपराध में उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो वर्ष के कारावास की सादी सजा सुनाई। राव गोपालसिंह जब अजमेर में दो वर्ष की सजा भुगत रहे थे, उस समय की कुछ घटनाएँ इस प्रकार हैं– काशी षड़यंत्र (Benaras Conspiracy), प्रसिद्ध पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा ''प्रताप'' पत्र का सम्पादक होना, खरवा ठिकाने पर कोर्ट ऑफ वार्डस, राव गोपालसिंह को दो वर्ष तक तिलहर स्थान पर नजरबन्द रखना, मुंशी चाँदमल भण्डारी को खरवा का मैनेजर नियुक्त कर दिया जाना, कुँवर गणपतसिंह को भी मैनेजर बने रहने के लिये राजी कर लिया। तत्कालीन परिस्थिति को समझकर राव गोपालसिंह ने कोर्ट ऑफ वार्डस बने रहने की शर्त को मंजूर कर लिया। **तिलहट से अजमेर आगमन–** देश की स्वाधीनता हेतु अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध किए गए संघर्ष के परिणामस्वरूप प्रदत्त-सजा का पाँच वर्ष का समय जेल तथा नजरबन्दी में बिताकर राव गोपालसिंह 26 मार्च, 1920 को तिलहर से प्रस्थान करके 27 मार्च को अजमेर पहुँचे। अजमेर नगर की जनता ने अपने प्रिय नेता का अभूतपूर्व स्वागत किया। उनका दिल्ली-अजमेर मेरवाड़ा प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् का अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण ऐतिहासिक भाषण था। अजमेर से खरवा आने पर खरवा और आसपास के गाँव की जनता खरवा रेलवे स्टेशन पर उमड़ पड़ी। अति उत्साह और उमंग से भरी भीड़ ने घोड़े हटाकर उनकी बग्गी को कंधे पर खींचा और रेल्वे स्टेशन से खरवा तक के दो मील के मार्ग को आनन-फानन में पार कर लिया। दूसरे वर्ष ''दिल्ली अजमेर मेरवाड़ा राजनैतिक परषिद्'' का जलसा 14 मार्च, 1921 को अजमेर में सम्पन्न हुआ।

सभा की अध्यक्षता पं. मोतीलाल नेहरू ने की। उक्त सभा में स्वागताध्यक्ष की हैसियत से राव गोपालसिंह ने स्वागत भाषण दिया। उक्त समारोह में आमंत्रित देश के नेताओं में श्रीमती कस्तूरबा गाँधी और मौलाना शोकत अली भी थे, जिन्हें राव गोपालसिंह के पास खरवा भवन में ठहराया गया था। मौलाना शोकत अली उसी समय राव गोपालसिंह से पगड़ी बदल भाई बने थे।

(क्रमश:)

पृष्ठ 6 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

का विरोध भी बुरी तरह से नहीं किया। जो पार्टी उनको टिकट देती थी, पार्टी के नाम पर चुनाव लड़ते थे, किसी व्यक्ति के खिलाफ चुनाव नहीं लड़ा....और पुस्तकों में, साहित्य में, कहीं भी किसी व्यक्ति का विरोध नहीं है, किसी पार्टी का विरोध नहीं है, विचारधारा का भेद है।

यह जो लोक शिक्षण चल रहा है यह आदिकाल से चल रहा है। भगवान कृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय में कहा है कि-हे अर्जुन! यह मैं जो ज्ञान तुमको दे रहा हूँ, यह रहस्यमयी बात मैं बता रहा हूँ, वह आदिकाल में मैंने सूर्य को दी थी, ज्ञान बताया था, सूर्य ने मनु को बताया था... मनु ने इक्ष्वाकु को बताया था, इसके बाद राज ऋषियों तक पहुँच करके वह ज्ञान लोप हो गया। वही ज्ञान मैं तुमको आज दे रहा हूँ। और वो फिर लोप हो गया, तब तनसिंहजी इस धरती पर आए और विष का विनाश, अमृत की रक्षा, सज्जनों की रक्षा, दुर्जनों का विनाश, इनका मूल्य स्थापित करने के लिए उन्होंने फिर से गीता का वही पाठ हम लोगों को बताया है। हम उनका, तनसिंहजी का...स्मरण करें, हम उन प्रणेताओं का स्मरण करें, जो तनसिंहजी के साथ में रह करके, उनके हाथ से हाथ मलाकर उनके साथ रहे...और उनके कार्य की नींव, फाउण्डेशन बने। हम भी कंगूरा बनने की कोशिश ना करें। हम भी नींव में पड़े रहने वाले पत्थर बनें। ऐसे जिनके संकल्प हैं, ऐसा जिनका त्याग है, उनको सम्पन्नता नहीं चाहिए, विपन्नता से प्रेम नहीं है, लेकिन कैसी भी स्थित हो, समभाव रहे, उसी में हम अपना काम करते रहें। इस प्रकार का काम सदैव तनसिंहजी ने किया, इसीलिए आज उनकी जयन्ती बनाई जा रही है।

जय संघशक्ति!

पुरुषोत्तम भगवान राम का वन गमन

– मूलसिंह चांदेसरा

कोपभवन के घटनाक्रम की जानकारी बाहर किसी को नहीं थी। यद्यपि सभी सारी रात जागे थे। कैकेयी अपनी जिद पर अड़ी हुई, राजा दशरथ उन्हें समझाते हुए, नगरवासी राज्याभिषेक की तैयारी करते हुए, गुरु वशिष्ठ की आँखों में भी नींद नहीं थी। आखिर, राम का अभिषेक था! दिन चढ़ने के साथ चहल-पहल और बढ़ गई। हर व्यक्ति शुभ घड़ी की प्रतिक्षा में था।

महामंत्री सुमंत्र कुछ असहज थे। महर्षि के पास आए। दोनों ने महाराज के बारे में चर्चा की। पिछली शाम से किसी ने महाराज को नहीं देखा था। कुछ लोगों के लिये इसका कारण आयोजन की व्यस्तता थी। महर्षि ने सुमंत्र को राजभवन भेजा। समय तेजी से बीत रहा था। शुभ घड़ी निकट आ रही थी। सारी तैयारियाँ हो चुकी थी। केवल महाराज का आना शेष था। सुमंत्र तत्काल राजभवन पहुँचे।

कैकेयी के महल की सीढियाँ चढते हुए सुमंत्र को एक अनजान डर ने घेर लिया। अन्दर पहुँचे, देखा कि महाराज पलंग पर पड़े हैं। बीमार। दीनहीन। सुमंत्रका मन भांपते हुए कैकेयी ने कहा, ''चिन्ता की कोई बात नहीं है, मंत्रिवर! महाराज राज्याभिषेक के उत्साह में रातभर जागे हैं। वे बाहर निकलने से पूर्व राम से बात करना चाहते हैं।''

''कैसी बात?'' सुमंत्र ने पूछा।

''मैं नहीं जानती। अपने मन की बात वे राम को ही बताएँगे। आप उन्हें बुला लाइए।''

दशरथ ने बहुत क्षीण स्वर में राम को बुलाने की आज्ञा दी। सुमंत्र के मन में कई तरह की आशंकाएँ थी। पर वे उन्हें टालते रहे। राम के निवास के बाहर भारी भीड़ थी। लक्ष्मण भी वहीं थे। भवन को सजाया गया था। उसकी चमक-दमक देखने योग्य थी। सुमंत्र को देखकर कोलाहल बढ़ गया। लोगों के लिये यह एक संकेत था, राज्याभिषेक के लिए राम को आमंत्रित करने का। सुमंत्र ने कहा, ''राजकुमार महाराज ने आपको बुलाया है। आप मेरे साथ ही चलें।''

कुछ ही पल में राम वहाँ पहुँच गए। लक्ष्मण साथ थे, दोनों भाई विस्मित थे। वे राजसी वस्त्रों में थे। सजे-धजे। लोग जय-जयकार करने लगे। पुष्पवर्षा होने लगी। राजकुमार समझ नहीं पा रह थे कि महाराज ने उन्हें अचानक क्यों बुलाया। लोग समझ रहे थे कि राम राज्याभिषेक के लिये जा रहे हैं।

महल में पहुँचकर राम ने पिता को प्रणाम किया। फिर माता कैकेयी को। राम को देखते ही राजा दशरथ बेसुध हो गए। उनके मुँह से एक हल्की-सी आवाज निकली, ''राम!'' उन्हें होश आया तब भी वे कुछ बोल नहीं सके। थोड़ी देर तक चुप्पी रही। असहज सन्नाटा। कोई कुछ नहीं बोला तो राम ने पिता से पूछा-''क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है, कोई कुछ बोलता क्यों नहीं? आप ही बताइए माते?''

''महाराज दशरथ ने मुझे एक बार दो वरदान दिए थे। मैंने कल रात वही दोनों वर मांगे, जिससे वे पीछे हट रहे हैं। यह शास्त्र-सम्मत नहीं है। रघुकुल की नीति के विरुद्ध है।'' कैकेयी ने बोलना जारी रखा।

''मैं चाहती हूँ कि राज्याभिषेक भरत का हो और तुम चौदह वर्ष वन में रहो। महाराज यही बात तुमसे नहीं कह पा रहे हैं।''

राम संयत रहे। उन्होंने दृढ़ता से कहा,-''पिता का वचन अवश्य पूरा होगा। भरत को राजगद्दी दी जाए। मैं आज ही वन चला जाऊँगा।''

राम की शान्त और सधी हुई वाणी सुनकर कैकेयी के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई। उनकी मनोकामना पूर्ण हुई। राजा दशरथ चुपचाप सब कुछ देख रहे थे। स्पंदनहीन। कैकेयी की ओर देखते हुए उनके मुँह से बस एक शब्द निकला-''धिक्कार!''

कैकेयी के महल से निकलकर राम सीधे अपनी माँ के पास गए, उन्होंने माता कौशल्या को कैकेयी-भवन का

विवरण दिया और अपना निर्णय सुनाया। राम वन जाएँगे। कौशल्या यह सुनकर सुध खो बैठी। लक्ष्मण अब तक शान्त थे। पर क्रोध से भरे हुए। राम ने समझाया और उनसे वन जाने की तैयारी के लिये कहा।

कौशल्या का मन था कि राम को रोक ले। वन न जाने दे। राजगद्दी छोड़ दे। पर वह अयोध्या में रहे। उन्होंने कहा, ''पुत्र! यह राजाज्ञा अनुचित है। उसे मानने की आवश्यकता नहीं है।'' राम ने उन्हें नम्रता से उत्तर दिया, ''यह राजाज्ञा नहीं, पिता की आज्ञा है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन मेरी शक्ति से परे है। आप मुझे आशीर्वाद दें।''

लक्ष्मण से राम का संवाद जारी रहा। राम ने वन-गमन को भाग्यवश आया उल्टफेर कहा। लक्ष्मण इससे सहमत नहीं थे। वे इसे कायरों का जीवन मानते थे। उन्होंने राम से कहा-''आप बाहुबल से अयोध्या का राजसिंहासन छीन लें। देखता हूँ कौन विरोध करता है।''

''अधर्म का सिंहासन मुझे नहीं चाहिए। मैं वन जाऊँगा। मेरे लिये तो जैसा राजसिंहासन, वैसा ही वन।''

कौशल्या ने स्वयं को संभाला। उठी और राम को गले लगा लिया। वे राम के साथ वन जाना चाहती थी। राम ने मना कर दिया। कहा कि वृद्ध पिता को आपके सहारे की अधिक आवश्यकता है। कौशल्या ने राम को विदा करते हुए कहा, ''जाओ पुत्र! दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए मंगलकारी हों। मैं तुम्हारे लौटने तक जीवित रहूँगी।''

कौशल्या भवन से निकलकर राम सीता के पास गए। सारा हाल बताया। विदा माँगी। माता-पिता की आयु का उल्लेख किया। उनकी सेवा करने का आग्रह किया। कहा,-''प्रिये! तुम निराश मत होना। चौदह वर्ष के बाद हम फिर मिलेंगे।''

राम के वन-गमन का समाचार तब तक सीता के पास नहीं पहुँचा था। राम को देखकर कुछ आशंका हुई। अनिष्ट की। राम ने विदा माँगी तो सीता व्याकुल हो गई। क्रोधित भी हुई। निर्णय पर प्रतिवाद किया। राम नहीं माने तो सीता ने उनके साथ जंगल जाने का प्रस्ताव रखा। सीता ने कहा,-''मेरे पिता का आदेश है कि मैं छाया की तरह हमेशा आपके साथ रहूँ।'' अंतत: राम को उनकी बात माननी पड़ी। तभी लक्ष्मण भी वहाँ आ गए। वह भी साथ जाने को तैयार थे। राम ने उन्हें इसकी स्वीकृति दे दी। शीघ्र तैयारी करने को कहा।

राम चाहते थे कि सीता वन न जाए। अयोध्या में रहे। वे इसकी अनुमति दे चुके थे। फिर भी उन्होंने एक और प्रयास किया।

''सीते वन का जीवन बहुत कठिन है। न रहने का ठीक स्थान, न भोजन का ठिकाना। कठिनाइयाँ कदम-कदम पर। तुम महलों में पली हो। ऐसा जीवन कैसे जी सकोगी? सीता ने उत्तर नहीं दिया। मुस्करा दी। उन्हें पता था कि राम अपने दिए वचन से पलट नहीं सकते।

राम वन जा रहे हैं। यह समाचार पूरे नगर में फैल चुका था। नगरवासी दशरथ और कैकेयी को धिक्कार रहे थे। कुछ देर पहले तक जहाँ उत्सव की तैयारियाँ थी वहाँ उदासी ने घर कर लिया। सड़कें गीली थी, लोगों के आँसुओं से। सबकी इच्छा थी राम-सीता वन न जाएँ। वे उन्हें रोकना चाहते थे। पर बेबस थे।

राम, सीता और लक्ष्मण जंगल जाने से पहले पिता का आशीर्वाद लेने गए। महाराज दशरथ दर्द से कराह रहे थे। तीनों रानियाँ वहीं थी। मंत्री आसपास थे। मंत्रीगण रानी कैकेयी को अब भी समझा रहे थे। क्षुब्ध थे पर तर्क का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। ज्ञान, दर्शन, नीति-रीति, परम्परा, सबका हवाला दिया। कैकेयी अड़ी रही।

राम ने कक्ष में प्रवेश किया तो दशरथ में जीवन का संचार हुआ। वे उठकर बैठ गए उन्होंने कहा,-''पुत्र! मेरी मति मारी गई है। मैं वचनबद्ध हूँ। ऐसा निर्णय करने के लिए विवश हूँ। पर तुम्हारे ऊपर कोई बन्धन नहीं है। मुझे बंदी बना लो और राज संभालो। यह राजसिंहासन तुम्हारा है। केवल तुम्हारा।''

पिता के वचनों ने राम को झकझोर दिया। वे दु:खी हो गए। पर उन्होंने नीति का साथ नहीं छोड़ा-''आंतरिक पीड़ा आपको ऐसा कहने पर विवश कर रही है। मुझे राज्य का लोभ नहीं है। मैं ऐसा नहीं कर सकता। आप हमें

आशीर्वाद देकर विदा करें। विदाई का दु:ख सहन करना कठिन है। इसे और न बढ़ाएँ।''

इसी बीच रानी कैकेयी ने राम, लक्ष्मण और सीता को वल्कल वस्त्र दिये। राम ने राजसी वस्त्र उतार दिये, तपस्वियों के वस्त्र पहने। सीता को तपस्विनी के वेश में देखना सबसे अधिक दु:खदायी था। महर्षि वशिष्ठ अब तक शान्त थे। उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने कहा,-''सीता वन जाएगी तो सब अयोध्यावासी उसके साथ जाएंगे। भरत सूनी अयोध्या पर राज करेंगे। यहाँ कोई नहीं होगा। पशु-पक्षी भी नहीं।''

एक बार फिर राम ने सबसे अनुमति माँगी। आगे-आगे राम। उनके पीछे सीता। उनके पीछे लक्ष्मण। महल के ठीक बाहर मंत्री सुमंत्र रथ लेकर खड़े थे। रथ पर चढकर राम ने कहा-''महामंत्री, रथ तेज चलाएँ।'' नगरवासी रथ के पीछे दौड़े। राजा दशरथ और माता कौशल्या भी पीछे-पीछे गए। सब रो रहे थे। सबकी आँखों में आँसू थे। पुरुष, महिलाएँ, बूढ़े, जवान,बच्चे मीलों तक नंगे पाँव दौड़ते रहे। राम यह दृश्य देखकर विचलित हो गए, भावुक भी, उनसे यह देखा नहीं जा रहा था। उन्होंने सुमंत्र से रथ को और गति से हांकने को कहा ताकि लोग हार जाएँ। थककर पीछे छूट जाएँ। घर लौट जाएँ। राजा दशरथ लगातार रथ की दिशा में नजरें गड़ाए रहे। खड़े रहे, जब तक रथ आँखों से ओझल नहीं हो गया। रथ दिखना बंद हुआ तो वे धरती पर गिर पड़े। रथ दिन भर दौड़ता रहा। वन अभी दूर था। तमसा नदी के तट पर पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। वनवासियों ने रात वहीं बिताई अगली सुबह वे दक्षिण दिशा की ओर चले। हरे-भरे खेतों के बीच से। गोमती नदी पार कर राम-सीता व लक्ष्मण सई नदी के तट पर पहुँचे। महाराज दशरथ के राज्य की सीमा वहीं समाप्त होती थी। राम ने मुड़कर अपनी जन्मभूमि को देखा। उसे प्रणाम किया। कहा,-''हे जननी! अब चौदह वर्ष बाद ही तुम्हारे दर्शन कर सकूँगा।''

शाम होते-होते वे गंगा के किनारे पहुँच गए, शृंगवेरपुर गाँव में। निषादराज गुह ने उनका स्वागत किया। राम ने रात वहीं विश्राम किया, गुहराज के अतिथि के रूप में। वन क्षेत्र आ गया था, नदी के उस पार। अगली सुबह राम ने महामंत्री को समझा बुझाकर वापस भेज दिया। दोनों राजकुमारों और सीता ने नाव से नदी पार की। सुमंत्र तट पर खड़े रहे, वनवासियों के उस पार उतरने तक। उसके बाद वे अयोध्या लौट आए।

सुमंत्र का खाली रथ अयोध्या पहुँचा तो लोगों ने उसे घेर लिया। वे राम के बारे में जानना चाहते थे। सुमंत्र बिना कुछ बोले सीधे राजभवन गए। राजा दशरथ कौशल्या भवन में थे, बेचैन, सुमंत्र की प्रतिक्षा में। उन्होंने कहा, ''महामंत्री! राम कहाँ है? सीता कैसी है? लक्ष्मण का क्या समाचार है? वे कहाँ रहते हैं? क्या खाते हैं?''

सुमंत्र की आँखों में आँसू थे। उन्होंने एक-एक कर महाराज के सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। सुमंत्र को पता था कि दशरथ को इन उत्तरों से संतोष नहीं होगा। महाराज की बेचैनी बनी रही। बढ़ती गई। वन-गमन के छठे दिन दशरथ ने प्राण त्याग दिए। राम का वियोग उनसे सहा नहीं गया।

दूसरे दिन महर्षि वशिष्ठ ने मंत्रिपरिषद से चर्चा की सबकी राय ली कि राजगद्दी खाली नहीं रहनी चाहिए। तय हुआ कि भरत को तत्काल अयोध्या बुलाया जाए। घुड़सवार दूत रवाना किए गए, इस निर्देश के साथ कि उन्हें अयोध्या की घटनाओं के संबंध में मौन रहना है।

✻

आवेग एक वस्तु है, जीवन दूसरी। जीवन जल का पात्र है, आवेग उसमें एक बुदबुदा मात्र। जीवन की सफलता के लिए किसी समय आवेग का दमन आवश्यक हो जाता है, जैसे रोग में पथ्य अरुचिकर होने पर भी उपयोगिता के विचार से ग्रहण किया जाता है।

– यशपाल

सत्संग और कुसंग

– श्री जयदयालजी गोयन्दका

महापुरुषों की महिमा और उनके सत्संग का फल :

जिस प्रकार भगवान के महान आदर्श चरित्र और गुणों की महिमा अनिर्वचनीय है, उसी प्रकार भगवत्प्राप्त संत महापुरुष के पवित्रतम चरित्र और गुणों की महिमा का भी कोई वर्णन नहीं कर सकता। ऐसे महापुरुषों में समता, शान्ति, ज्ञान, स्वार्थत्याग और सौहार्द आदि पवित्र गुण अतिशय रूप में होते हैं, इसी से ऐसे पुरुषों के सङ्ग की महिमा शास्त्रों में गायी गयी है। श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं –

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

ठीक यही भाव श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में है–

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।

(1/18/13)

'भगवत्सङ्गी अर्थात् नित्य भगवान के साथ रहने वाले अनन्य प्रेमी भक्तों के निमेषमात्र भी संग के साथ हम स्वर्ग और मोक्ष की भी समानता नहीं कर सकते, फिर मुनष्यों के इच्छित पदार्थों की तो बात ही क्या है?'

भगवत्प्रेमी महापुरुषों के एक निमेष के सत्संग के साथ स्वर्ग-मोक्ष किसी की भी तुलना नहीं होती-यह बात उन्हीं लोगों की समझ में आ सकती है, जो श्रद्धा तथा प्रेम के साथ नित्य सत्संग करते हैं।

प्रथम तो संसार में ऐसे महापुरुष हैं ही बहुत कम। फिर उनका मिलना बहुत दुर्लभ है और मिल जायें तो पहचानना अत्यन्त दुर्लभ है। तथापि यदि ऐसे महापुरुषों का किसी प्रकार मिलना हो जाए तो उससे अपने-अपने भाव के अनुसार लाभ अवश्य होता है; क्योंकि उनका मिलना अमोघ है। श्रीनारदजी ने भक्ति सूत्रों में कहा है–

'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।' (नारद. सू. 39)

'महात्माओं का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।'

अपने-अपने भाव के अनुसार लाभ कैसे होता है? इस पर एक कल्पित दृष्टान्त है –

दो ब्राह्मण किसी जंगल के मार्ग से जा रहे थे। दोनों अग्निहोत्री थे। एक सकामभाव से अग्नि उपासना करने वाला था, दूसरा निष्कामभाव से। रास्ते में बड़े जोर की आँधी और वर्षा आ गयी। थोड़ी ही दूर पर एक धर्मशाला थी। वे दोनों किसी तरह धर्मशाला में पहुँचे। अँधेरी रात्रि थी और जाड़े के दिन। धर्मशाला में दूसरे लोग भी ठहरे हुए थे और वे सभी प्राय: सर्दी से ठिठुर रहे थे। धर्मशाला में और सब चीजें थी, पर अग्नि का कहीं पता नहीं लगता था। न किसी के पास दियासलाई ही थी। उन दोनों ब्राह्मणों ने जाकर अग्नि की खोज आरम्भ की। उन्हें एक जगह कमरे के आस-पास बैठे हुए लोगों ने बतलाया कि हमें तो जाड़ा नहीं लग रहा है, पता नहीं वहाँ से किस चीज की गर्मी आ रही है। उन लोगों ने उस कमरे को खोलकर देखा तो पता लगा उसमें राख से ढकी आग है। इसी आग की गर्मी से वह कमरा गर्म था, शेष सारी धर्मशाला में सर्दी छायी थी। जब आग का पता लग गया, तब सब लोग प्रसन्न हो गये। पहले से ठहरे हुए जिन लोगों को अग्नि में श्रद्धा नहीं थी और जो केवल अग्नि से रोशनी और रसोई की ही अपेक्षा रखते थे, उन्होंने उससे रोशनी की और रसोई बनायी। दोनों अग्निहोत्री ब्राह्मणों ने, जिनके अग्नि के ज्ञान के साथ ही उनमें श्रद्धा थी, रोशनी तथा रसोई का लाभ तो उठाया ही, पर साथ ही अग्निहोत्र भी किया। इनमें जो सकामभाव का था, उसने सकामभाव से अग्निहोत्र करके लौकिक कामना-सिद्धि रूप सिद्धि प्राप्त की और जो निष्कामभाव वाला था, उसने अपने निष्कामभाव से अग्निहोत्र करके अन्त:करण की शुद्धि के द्वारा परमात्मप्राप्ति विषयक परम लाभ उठाया। इस प्रकार जिनको अग्नि का ज्ञान भी नहीं था, उन्होंने भी अग्नि के स्वभाव वश उसके निकट रहने के कारण गर्मी प्राप्त की, जिन्हें ज्ञान था, पर श्रद्धा नहीं थी, उन लोगों ने केवल

रोशनी-रसोई का लाभ उठाया। ज्ञान-श्रद्धा के साथ सकामभाव से अग्निहोत्र करने वाले ने सकाम सिद्धि पायी और निष्कामी पुरुष ने परमात्मविषयक लाभ उठाया। इसी प्रकार किन्हीं महापुरुष का यदि संग हो जाए और उन्हें पहचाना भी न जाए तो भी उनके स्वाभाविक तेज से पाप रूपी ठंडक का तो नाश होता ही है। जो लोग महात्माओं को किसी अंश में ही जानते हैं और उनसे साधारण क्षणिक लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें साधारण क्षणिक लाभ मिल जाता है। जिनमें श्रद्धा है पर साथ ही सकामभाव है वे उनका संग करके इस लोक और परलोक के भोगों की प्राप्ति रूप विषयक लाभ प्राप्त करते हैं और जो उन्हें भलीभाँति पहचानकर श्रद्धा के साथ निष्कामभाव से उनका संग करते हैं, वे परमात्म प्राप्ति विषयक लाभ उठाते हैं। इस प्रकार महात्मा के अमोघ संग से लाभ सभी को होता है, पर होता है अपनी-अपनी भावना के अनुसार।

महात्मा पुरुषों के भी शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि मायिक होते हैं, परन्तु परमात्मा की प्राप्ति के प्रभाव से वे साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पवित्र, विलक्षण और दिव्य हो जाते हैं, अतएव उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप से तो लाभ होता ही है, मन के द्वारा उनका स्मरण हो जाने से भी बड़ा लाभ होता है। जब एक कामिनी के दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप और चिन्तन से कामी पुरुष के हृदय में काम का प्रादुर्भाव हो जाता है, तब भगवत्प्राप्त महापुरुष के दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप और चिन्तन से साधक के हृदय में तो भगवद्भाव और ज्ञान का प्रादुर्भाव अवश्य होना ही चाहिये।

ऐसे महापुरुषों के हृदय में दिव्य गुणों का अपार शक्ति सम्पन्न समूह भरा रहता है, जिसके दिव्य बलशाली परमाणु नेत्र मार्ग से निरन्तर बाहर निकलते रहते हैं और दूर-दूर तक जाकर जड़-चेतन सभी पर अपना प्रभाव डालते रहते हैं। मनुष्यों पर तो उनके अपने-अपने भावानुसार न्यूनाधिक रूप में प्रभाव पड़ता ही है, विविध पशु-पक्षियों तथा जड़ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वृक्ष, पाषाण, घास आदि पदार्थों तक पर भी असर पड़ता हैं। उनमें भी भगवद्भाव के पवित्र परमाणु प्रवेश कर जाते है। ऐसे महात्मा जिस पशु-पक्षी को देख लेते हैं, जिस वायुमण्डल में रहते हैं, जो वायु उनके शरीर को स्पर्श करके जाता है, जिस अग्नि से वे अग्निहोत्र करते, रसोई बनाते या तापते हैं, जिस सरोवर या नदी में स्नान-पान करते हैं, जिस भूमि पर निवास करते हैं, जिस वृक्ष का किसी प्रकार उपयोग करते हैं, जिस पाषाणखण्ड का स्पर्श कर लेते हैं, जिस चौकी पर बैठ जाते हैं और जिन तृणाङ्कुरों पर स्थित हो जाते हैं और उन वस्तुओं को काम में लेते हैं या जिन-जिनको उनका संसर्ग प्राप्त होता है-उन लोगों को भी बिना जाने-पहचाने भी सद्भाव की प्राप्ति में लाभ होता है। जिनमें श्रद्धा, ज्ञान तथा प्रेम होता है, उनको यथापात्र विशेष लाभ होता है।

ऐसे महात्माओं की वाणी से भी उनके हृद्यगत भावों का विकास होता है; इससे उसे सुनने वालों पर यथाधिकार-जो जैसा पात्र होता है तदनुसार प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही वह वाणी (शब्द) नित्य होने के कारण सारे आकाश में व्याप्त होकर स्थित हो जाती है और जगत् के प्राणियों का सदा सहज ही मंगल किया करती है। जहाँ उनकी वाणी का प्रथम प्रादुर्भाव होता है, वह स्थान और वहाँ का वायुमण्डल विशेष प्रभावोत्पादक बन जाता है। इसी प्रकार उनके शरीर का स्पर्श होने से भी लाभ होता है। भावों के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, इससे उनको प्रत्यक्ष प्रतीति नहीं होती; पर वे वैसे ही सद्भाव का प्रसार करते हैं जैसे प्लेग के कीटाणु रोग का विस्तार करते हैं।

ऐसे महापुरुषों की प्रत्येक क्रिया सर्वोत्तम दिव्य चरित्र, गुण और भावों से ओत-प्रोत रहती है; अतएव उनके चिन्तनमात्र से-स्मृतिमात्र से उनके चरित्र, गुण और भावों का प्रभाव दूसरों के हृदय पर पड़ता है। नाम की स्मृति आते ही नामों के स्वरूप का स्मरण होता है। स्वरूप के स्मरण से भी क्रमशः चरित्र, गुण और भावों की स्मृति हो जाती है, जो हृदय को उन्हीं भावों से भरकर पवित्र बना देती है। वस्तुतः महापुरुष का मानसिक संग बहुत लाभदायक होता है; चाहे महात्मा किसी साधक का स्मरण कर ले या साधक किसी महात्मा का स्मरण कर ले। अग्नि घास पर पड़ जाए या घास अग्नि में पड़ जाए, अग्नि का

संसर्ग उसके घास-स्वरूप को मिटाकर उसे तुरन्त अग्नि बना देगा। इसी प्रकार ज्ञानाग्नि से परिपूर्ण अधिकारी महात्मा के संग से साधक के दुर्गुण और दुराचारों का तथा अज्ञान का नाश हो जाता है, चाहे वह संसर्ग महात्मा के द्वारा हो या साधक के द्वारा। महात्मा स्वयं आकर दर्शन दें तब तो वह प्रत्यक्ष ही केवल श्री भगवान् की अपार कृपा का ही फल है, परन्तु यदि साधक अपने प्रयत्न से महात्मा से मिले तो इससे साधक के अन्त:करण में शुभ संस्कार अवश्य सिद्ध होते हैं, क्योंकि शुभ संस्कार हुए बिना महात्मा से मिलने की इच्छा और चेष्टा ही क्यों होने लगी तथापि इसमें भी प्रधान कारण भगवान की कृपा ही है-

'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।'

इस संसार में जितने भी तीर्थ हैं, सब केवल दो के ही सम्बन्ध से बने हैं- (1) श्रीभगवान के किसी भी स्वरूप या अवतार के प्राकट्य, निवास, लीला चरित्रादि के होने से और (2) महापुरुषों के निवास, तप, साधन, प्रवचन या समाधि आदि के होने से। देशगत अच्छे परमाणुओं का परिणाम प्रत्यक्ष है। आज भी जो लोग घर छोड़कर पवित्र तीर्थ या तपोभूमियों में निवास करते हैं, उनको अपनी-अपनी श्रद्धा तथा भाव के अनुसार विशेष लाभ होता ही है। इसका कारण यही है कि उक्त भूमि, जल तथा वातावरण में ईश्वर के लीला चरित्रादि के या महात्माओं के तपस्या, भक्ति, सदाचार, सद्गुण, सद्भाव, ज्ञान आदि के शक्तिशाली परमाणु व्याप्त हैं।

विशेष और शीघ्र लाभ तो वे साधक प्राप्त करते हैं, जो ईश्वर और महापुरुषों की इच्छा का अनुसरण, आचरणों का अनुकरण और आज्ञा का पालन करते हैं। जो भाग्यवान पुरुष महापुरुषों की आज्ञा की प्रतीक्षा न करके सारे कार्य उनकी रुचि तथा भावों के अनुकूल करते हैं, उन पर भगवान की विशेष कृपा माननी चाहिये। यों तो श्रेष्ठ पुरुषों का अनुकरण साधारण लोग किया ही करते हैं। इसीलिये श्री भगवान ने भी कहा है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

(गीता 3/21)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है।'

पर जो श्रद्धा-विश्वासपूर्वक महापुरुषों के चरित्र का अनुकरण और उनके द्वारा निर्णीत मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे विशेष लाभ प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार भगवान और महात्माओं के चरित्र, उपदेश, ज्ञान, महत्त्व, तत्त्व, रहस्य आदि की बातें जिन ग्रन्थों में लिखित हैं, महात्माओं के और भगवान के चित्र जिन दीवालों तथा कागजों पर अंकित हैं; यहाँ तक कि महात्माओं की और भगवान की स्मृति दिलाने वाली जो-जो वस्तुएँ हैं-उन सबका संग भी सत्संग ही है तथा श्रद्धा-विश्वास के अनुसार सभी को लाभ पहुँचाने वाला है। जिस प्रकार स्वाभाविक ही मध्याह्नकाल के सूर्य से प्रखर प्रकाश, पूर्णिमा के चन्द्रमा की ज्योत्सना से अमृत एवं अग्नि से उष्णता प्राप्त होती है, उसी प्रकार महात्मा पुरुषों के संग से स्वाभाविक ही ज्ञान का प्रकाश, शान्ति की सुधा धारा एवं साधन में तीक्ष्णता और उत्तेजना प्राप्त होती है।

इसलिये सभी को चाहिये कि अपनी इन्द्रियों को, मन को, बुद्धि को नित्य-निरंतर महापुरुषों के सत्संग और उन्हीं विषयों में लगाये जो भगवान तथा महापुरुषों के संसर्ग या सम्बन्ध से भगवद्भाव-सम्पन्न हो चुके हों। ऐसा करने पर उन्हें सर्वत्र तथा सर्वदा सत्संग ही मिलता रहेगा।

उपर्युक्त विवेचन श्री भगवान और सच्चे अधिकारी महापुरुषों के सम्बन्ध में है। ऐसे महापुरुष कोई विरले ही होते हैं। इस सिद्धान्त का दुरुपयोग करके जो दुराचारी लोग शास्त्रों तथा भगवान का खण्डन करते हुए दम्भपूर्वक स्वयं अपने को भगवान या महापुरुष बतलाकर अपने कल्पित मिथ्या नाम का जप-कीर्तन करवाते, अपने नश्वर शरीर को पुजवाते, लोगों को अपना उच्छिष्ट, अपने चरणों की धूलि और चरणामृत देते, अपने चित्र का ध्यान करवाते और इस प्रकार जनता को धोखा देकर स्वार्थ-साधन करते हैं वे वस्तुत: बड़ा पाप करते हैं। ऐसे लोगों को महापुरुष मानना बड़े-से-बड़े धोखे में पड़ना है तथा ऐसे लोगों का संग करना बड़े-से-बड़ा कुसंग है।

असल में यह एक सिद्धान्त है कि जिस प्रकार के भाव वाले पुरुष का संसर्ग जिस मात्रा में चेतनाचेतन पदार्थों को प्राप्त होता है, उसी प्रकार के भावों का उसी मात्रा में न्यूनाधिक रूप से उनमें प्रवेश होता है और यह प्रवेश जैसे महात्माओं के भावों का होता है वैसे ही दुरात्माओं के भावों का भी होता है। महात्माओं के भावों का जैसे सच्चे श्रद्धालु व्यक्तियों पर तथा सात्त्विक पदार्थों पर विशेष प्रभाव पड़ता है, वैसे ही दुराचारियों के भावों का दुराचार परायण व्यक्तियों एवं राजस-तामस पदार्थों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसलिये अब यहाँ कुसंग के फल पर संक्षेप में विचार किया जाता है।

दुराचारी पुरुष और दुराचारियों के कुसंग का फल :

जिस प्रकार सत्संग से बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार कुसंग से बुरा प्रभाव पड़ता है। भगवद्भाव से रहित नास्तिक, विषयी, पामर, आलसी, प्रमादी और दुराचारी व्यक्तियों का संग तो प्रत्यक्ष हानिकारक और पतन करने वाला है ही; इनके संसर्ग में आये हुए मनुष्य, पशु-पक्षी और जड़ पदार्थों का संसर्ग भी हानिकारक है। जो लोग गंदे नाटक-सिनेमा देखते हैं, रेडियो के शृंगारपरक गंदे गाने तथा वार्तालाप सुनते हैं, घरों में ग्रामोफोनादि पर गंदे रेकार्ड चढ़ाकर सुनते-सुनाते हैं, व्यभिचारियों और अनाचारियों के मुहल्लों में रहते हैं और उन लोगों के संसर्ग में आये हुए पदार्थों का सेवन करते हैं, उन पर भी बुरा असर होता है एवं जो लोग मोह या स्वार्थवश ऐसे लोगों का सेवन, संग तथा अनुकरण करते हैं, उनका तो-इच्छा न होने पर भी-शीघ्र पतन हो जाता है। संग का रंग चढ़े बिना नहीं रहता। एक आदमी जूआ खेलना बुरा समझता है, चोरी-डकैती को पाप मानता है, शराब से दूर रहना चाहता है, अनाचार-व्यभिचार की बात भी नहीं सुनना चाहता, वह भी यदि ऐसे लोगों के गिरोह में किसी भी कारण से सम्मिलित होने लगता है और यदि उसे अनिष्टकर मानकर शीघ्र ही छोड़ नहीं देता तो कुछ ही समय में उस संग दोष के कारण पहले उन कुकर्मों में उसकी घृणा कम होती है; फिर घृणा का नाश होता है, तदनन्तर उनमें प्रवृत्ति होने लगती है और अन्त में वह भी प्राय: वैसा ही बन जाता है। इसके अनेकों उदाहरण हमारे सामने हैं।

कामी के संग से काम का, क्रोधी के संग से क्रोध का और लोभी के संग से लोभ का प्रकट होना, बढ़ना और तद्नुसार क्रिया करवा देना स्वाभाविक होता है। काम-क्रोध-लोभ जिनमें उत्पन्न होकर बढ़ जाते हैं, उनका पतन अवश्यम्भावी है। भगवान ने इनको नरक का द्वार और आत्मा का पतन करने वाला बतलाया है। (गीता 16/21)। संगदोष से चरित्र बिगड़ जाता है, खान-पान भ्रष्ट हो जाता है और मन में तथा आचरणों में नाना प्रकार के दोष आकर दृढ़ता के साथ अपना डेरा जमा लेते हैं। इसीलिये शास्त्रों ने अमुक-अमुक स्थितियों के तथा अमुक-अमुक कार्य करनेवाले लागों के संसर्ग से बचने की आज्ञा दी है, यहाँ तक कि उन्हें स्पर्श करने तक का निषेध किया है। इनमें प्रसूति का और रजस्वलावस्था में पूजनीया माता, प्रियतमा पत्नी तथा अपने ही शरीर से उत्पन्न पुत्री तक के स्पर्श का निषेध किया है। आज भी विशेषज्ञ, डाक्टर आदि किसी संक्रामक रोग से पीड़ित रोगी को छूकर हाथ धोते हैं और किसी अंश में इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। यह वैज्ञानिक तत्त्व है। हमारे परम विज्ञ ऋषि-मुनि दीर्घदृष्टि और सूक्ष्मदृष्टि से सम्पन्न थे। प्रत्येक वस्तु के परिणाम को जानते थे, इसी से उन्होंने स्पर्शास्पर्श की विधि का निर्दोष निर्माण किया था। यह केवल संगदोष से बचने के लिये था, न कि किसी जाति या व्यक्तिविशेष से घृणा करने के लिये।

दुराचारी नर-नारियों के संग का तो बुरा असर होता ही है, पशु-पक्षियों की अश्लील क्रिया, चित्र लिखे अश्लील दृश्य, समाचार पत्रों में प्रकाशित नारियों आदि के चित्र, किसी के अश्लील और घृणित बर्ताव और क्रियाओं का वर्णन देखने-सुनने और पढ़ने में भी चित्त में अश्लील और असद्भावों की जागृति हो जाती है। इस तत्त्व को समझकर मनुष्य को सब प्रकार के कुसंग का सर्वथा त्याग करना चाहिये। श्रीरामचरितमानस में कहा है-

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ बिधाता।।

नरक में रहकर वहाँ की यंत्रणा भोगना अच्छा पर विधाता कहीं बुरा संग न दे। क्षण भर का भी बुरा संग गिराने वाला होता है।

संघ का व्यावहारिक दृष्टिकोण

– महिपालसिंह चूली

मानव सभ्यता के आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक जो भी मानव ने प्रगति की है, उसमें मनुष्य का व्यवहार कितना समृद्ध, सुयोग्य, सफल रहा, या मानव ने अपने मानवतावादी व्यवहार में कितनी प्रगति प्राप्त की, इसका यदि मूल्यांकन किया जाये तो इसका परिणाम अन्ततोगत्वा अवरोही क्रम में ही मिलेगा और उत्तरोत्तर निम्नता की ओर अग्रसर होता नजर आएगा।

आज राष्ट्र भले ही विज्ञान, ज्ञान व भौतिक संसाधनों में कितनी ही उन्नति करके विकासशील या विकसित राष्ट्रों की सूची में अपना नाम जुड़वाले परन्तु मानवता तो गिरती व नष्ट होती दिखाई दे रही है। यदि जो ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में भी व्याप्त है, तो संसार के सभी मानवों में व्यवहार, आचार-विचार का दृष्टिकोण है, वह हमारे अन्दर भी है। हम भी इस आधुनिक संसार की विचारधारा से अछूते नहीं रह सकते। इसलिए हम क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी क्षत्रियोचित जीवन जीना नहीं जानते हैं। हम भी अपने व्यवहारिक जीवन में सफल नहीं हो पाते जिसके परिणामस्वरूप आज हमारे घर-परिवार में अशान्तिपूर्ण वातावरण दिखाई दे रहा है।

पिछले कई वर्षों से श्री क्षत्रिय युवक संघ सैंकड़ों-हजारों युवकों में संस्कारमय कर्मप्रणाली के माध्यम से जीवन व्यवहार, आचार-विचार में क्षत्रियोचित गुणों का बीजारोपण करता आ रहा है। जिसके कारण हम हमारे व्यवहार को कैसा बनाएँ कि जिससे हम इस संसार में भटके हुए लोगों को सही मार्ग पर चला सकें उसके लिये स्वयं साधक रूप में साधना में प्रयत्नशील हैं। हम अपने व्यवहार को मानवोचित बना सकें और वर्तमान में जो यह अन्याय, अशान्ति, अत्याचार और अमानवीयता प्रसारित है, उसे मिटाकर सही राह दिखाएँ, ऐसे कर्म करें, ऐसा व्यवहार करें जिससे हमारे घर-परिवार, गाँव, देश व मानवता तथा प्राणी तक का मंगल हो। यही हमारा धर्म है। इसके लिए कुछ छोटे-छोटे सूत्र हैं जो हमारे व्यवहार में अपनाएँ तो हर दिन उत्सव बन जाए।

सजगता– हमारे जीवन का हर पल सजगता के साथ जीयें। हमारा उठना, बैठना, बोलना-चालना, खाना-खाना जाग्रत अवस्था में होना चाहिए। हमको परमपिता द्वारा विशेष उत्तरदायित्व देकर क्षत्रिय कुल में जन्म दिया गया है तो हमारा प्रत्येक उठने वाला कदम सजगता के साथ उठे ताकि हम अपने आपको गफलत से बचा सकें और दूसरों के लिये पथ प्रदर्शक बन सकें। इसी सजगता के साथ जीवन जीने के कारण आज भी हमारे पूर्वजों को प्रातः स्मरणीय माना जाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ अपने बौद्धिक शिक्षण से, खेलों के माध्यम से युवकों में जागृति लाने में प्रयासरत है। एक छोटा-सा खेल है-हर-बम या नीर-तीर, थोड़ा सा भी ध्यान इधर-उधर भटका और तारतम्य टूट जाता है जिससे खेल से बाहर होना पड़ता है। सजगता बनाये रखने में इससे सहायता मिलती है, स्वभाव बनता है। जीवन में अपने धर्म के प्रति, कर्म के प्रति, कर्तव्य के प्रति सदैव सजग बने रहें, यह आवश्यक है।

सहजता– हमारा अन्तर-मन सहजता से परिपूर्ण हो। हमारे दैनिक व्यवहार में जो भी परिस्थिति आए उसमें हम आपा न खो बैठें। उससे निपटने के लिये सहज भाव से तैयार रहें। उसका जो भी परिणाम आए, उसे स्वीकार करें। संघ की विचारधारा है कि हर स्थिति में सहज रहें-

जैसे रखोगे वैस खुश ही रहेंगे,
जमाने को कौम की रे कहानी कहेंगे।

यह भाव संघ सिखाता है जो एक क्षत्रिय के जीवन व्यवहार में अति आवश्यक है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों की दिनचर्या इतनी कष्टप्रद होते हुए भी 10-15 दिन साथ रहकर इस प्रकार जीवन जीते हैं कि हर कठिनाई सहज रूप में व्यवहार में ढल जाती है और शिविर के दिन आनन्द व सुख भरे लगते हैं। यदि ऐसा

भाव हमारे जीवन में हर समय के लिए आ जाए तो यह जीवन भी आनन्दमय, सुखमय बन जाए।

समरसता– अर्थात् हर स्थिति में समानता का भाव। सुख में व दुख में समभाव से रहना ही समरसता है। मीठा-मीठा गप और खारा आते ही-थू, तो समरसता नहीं रही। आज के समय में हमारे व्यवहार में इस गुण का अभाव अत्यधिक है। जब तक कोई व्यक्ति हमारी हाँ में हाँ मिलाता रहे, हमारी प्रत्येक माँग को स्वीकार करता रहे, तब तक तो वह व्यक्ति भला है; और यदि एक बार भी मना कर दिया तो हमारे लिए उसके जैसा बुरा कोई नहीं। हम ऐसे न बनें इसके लिये क्षत्रिय युवक संघ हमको हर समय समभाव रखने का अभ्यास करवाता है। जंगलों में, अभावों में, कम आवश्यकताओं में रहने का अभ्यास करवाता है, ताकि हम इतने मजबूत हो जाएं कि समाज, देश या मानवता के लिये हर परिस्थिति में हम हर पल तैयार रहें। संघ ऐसे कर्मठ, उत्साही और सम दृष्टिकोण वाले युवक तैयार कर रहा है जो भविष्य में हर परिस्थिति में सेवारत रहते हुए भारत के भाग्य विधाताओं में होंगे।

प्रसन्नता– प्रसन्नता एक महत्त्वपूर्ण गुण है। प्रकृति में पेड़, पौधे, फूल को खिलता हुआ देखकर हर व्यक्ति खुश हो जाता है। ऐसे ही हमारा व्यवहार भी यदि प्रसन्नता से भरा हुआ हो तो हमारे सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति भी प्रसन्न होगा, खुश होगा। अपने लक्ष्य का हर पल ध्यान रखते हुए, उसे प्राप्त करने की तड़पन बनी रहे, पर प्रसन्नता अखण्ड रहे।

अन्दर आग जली जलकर न पर्वत को तपाती है।
तभी झरने खलकते और हरियाली सुहाती।।

कर्तव्य पालन हेतु अनिष्टों से लड़ने की तड़पन, आग बाहर न भभके। हमारा व्यवहार इतना प्रेम, प्रसन्नता और आनन्द से भरा हुआ हो कि चुम्बक की भाँति हर कोई व्यक्ति आकर्षित हो, हमारे निकट आए। परिवार, गाँव में हमारे व्यवहार का सकारात्मक प्रभाव पड़े। क्षत्रिय युवक संघ हमें सच्चा लोकसंग्रह कर्ता बनाना चाहता है ताकि भटके हुओं को मार्ग पर लाया जा सके, इसके लिए पहले स्वयं को सही राह पर लाना होगा।

धैर्य– धीरज, धैर्य हमारा महत्त्वपूर्ण स्वाभाविक कर्म है। क्षत्रिय के लिये धैर्यशाली होना अति आवश्यक है। भभकना तो ऊर्जा को नष्ट करना है। धीरज सबलता प्रदान करता है। कोई भी निर्णय सोच-विचार कर लेना जरूरी है।

फूल खिलेंगे, धीरज धरिये
भरिये रस भण्डार।

धैर्य रखें और कर्तव्य निभाने के लिये, हर आसन्न विपत्ति से लड़ने का रस, क्षमता पनपाएँ। उतावलापन सदैव नुकसान दायक है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिक्षण में धैर्य का बार-बार अभ्यास करवाया जाता है। जीवन में प्रत्येक कदम पर संभल-संभलकर चलना आवश्यक है। ठीक ही कहा है-

धीरे-धीरे ठाकरां, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, रुत आयां फल होय।।

इस प्रकार श्री क्षत्रिय युवक संघ अपने शिक्षण के माध्यम से युवकों को जीवन व्यवहार में सफलतम व्यक्ति बनने का तरीका बताता है। अधिकारी बनाने के लिये अनेक कोचिंग संस्थान हैं, रुपये-पैसे कमाने के भी अनेकों तरीके हैं, परन्तु मनुष्य को सच्चा मानव, सच्चा इंसान, एक सच्चा क्षत्रिय बनाने का प्रशिक्षण स्थल मात्र श्री क्षत्रिय युवक संघ है, इससे प्राप्त शिक्षण से हम हमारे जीवन व्यवहार को श्रेष्ठ बना सकते हैं। बस इसमें निरन्तरता और नियमितता आवश्यक है-

अब अन्तर के तप की धूनी को रमाना है।
जो बाहर दिखता है, भीतर भी दिखाना है।
निज को न बनाया तो जग रंच नहीं बनता।।

✲

प्रसन्नता रामबाण औषधि है। इसमें स्नान करने से प्रत्येक व्यक्ति निरोग और पवित्र हो जाता है। गंभीर चिंता और उदासी को प्रसन्नता के पावन जल से धो डालिए।

– स्वेट मार्डेन

बुद्धिमान

– रश्मि रामदेरिया

वही सबसे बुद्धिमाएन है जो ईश्वर को खोजता है। वही सर्वाधिक सफल है जिसने ईश्वर को पा लिया।

''हमें भूत के बारे में पछतावा नहीं करना चाहिये, ना ही भविष्य के बारे में चिंतित होना चाहिये; विवेकवान-बुद्धिमान व्यक्ति हमेशा वर्तमान में जीते हैं।'' किसी भी कार्य की शुरुआत से पहले हमें खुद से तीन सवाल पूछने चाहिये। जो हमारे लक्ष्य प्राप्ति से आ रही बाधाओं को पार करने में मददगार साबित होंगे। तीन प्रश्न :-

1. मैं यह क्यों कर रहा हूँ?

2. मेरे द्वारा किए जा रहे इस कार्य के परिणाम क्या-क्या हो सकते हैं?

3. मैं जो कार्य प्रारम्भ करने जा रहा/रही हूँ क्या मैं सफल हो सकूंगा?

ज्ञान हम सब के पास है, लेकिन उस ज्ञान का प्रयोग कितना और कहाँ करना है यह एक बुद्धिमान व्यक्ति ही समझ सकता है। बुद्धि की शक्ति उसके उपयोग में है, विश्राम में नहीं। बुद्धिमान वह है, जो वर्तमान को ठीक प्रकार से समझे और परिस्थितियों के अनुसार आचरण करे।

''आदमी साधनों से नहीं, साधना से श्रेष्ठ बनता है; आदमी भवनों से नहीं, भावना से श्रेष्ठ बनता है; आदमी उच्चारण से नहीं; उच्च आचरण से श्रेष्ठ बनता है।''

बहते पानी की तरह बहते चलें तो कचरा अपने आप किनारे लग जाएगा। इस बात को व्यक्त मत होने दीजिये कि आपने क्या करने के लिये सोचा, बुद्धिमानी से इसे रहस्य बनाये रखिये और इस काम को करने के लिये दृढ़ रहिये। बुद्धिमान व्यक्ति का कोई दुश्मन नहीं होता। ज्ञानी वही है जो, सच्चे मित्र को कभी नहीं छोड़ता।

बुद्धिमान वह है जो वर्तमान को ठीक प्रकार से समझे और परिस्थितियों के अनुसार आचरण करे। असम्भव, इस शब्द का प्रयोग केवल कायर लोग ही करते हैं, बहादुर और ज्ञानी मनुष्य अपना रास्ता खुद बनाते हैं। मूर्ख व्यक्ति अपने क्रोध को जोर-शोर से प्रकट करता है, लेकिन बुद्धिमान शान्ति से उसे वश में करता है। ''कर्मयोग वास्तव में एक परम् रहस्य है'' लगातार पवित्र विचारों को अपने अन्दर लाते रहें बुरे संस्कारों को दबाने के लिये यही समाधान है।

''आँसू कहा न बन्धु मेरी, परम्परा शरमायेगी
कदम बढ़ा धरा तेरे, बोझ में झुक जायेगी
पहचान तेरे रूप को कल्पना नई करें।।
सोचना शुरू करें
आओ जरा से बैठकर, चेतना नहीं भरें।
सोचना शुरू करें।।''

चिड़िया अपने रात के भोजन का इंतजाम पहले ही कर लेती है और रात में रहने के लिए घोंसला बनाती है, क्योंकि उसे पता होता है कि रात से बार-बार उसका सामना होगा और हर रात के बाद फिर सुबह होगी। ठीक उसी तरह बुद्धिमान व्यक्ति दुःख और मुश्किलों से निपटने के उपाय पहले से ही कर लेता है। ''पानी दरिया में हो या आँखों में गहराई और राज दोनों में होते हैं।''

"Nothing is permanent in this World, not even our troubles." किसी से उम्मीद किए बिना उसका अच्छा करो; क्योंकि किसी ने कहा है 'कि जो लोग फूल बेचते हैं उनके हाथ में खुशबू अक्सर रह जाती है।' और एक बात हर समय हम सबको याद रखनी चाहिए, वो है कि हम हर पल मुस्कुराते रहें खुद भी प्रसन्नचित रहें और दूसरों को भी रखें इसलिए नहीं कि हमारे पास हँसने का कारण है, पर इसलिए क्योंकि दुनिया को रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता आपके/हमारे आँसुओं से। ''यूँ तो ए जिन्दगी तेरे सफर से शिकायतें बहुत थी मगर दर्द जब दर्ज कराने पहुँचे तो कतारें बहुत थी।''

(शेष पृष्ठ 29 पर)

विद्या

– संकलित

जिस विद्या से लोग जीवन संग्राम में शक्तिमान नहीं होते, जिस विद्या से मनुष्य के चरित्र का विकास नहीं होता और जिस विद्या से मनुष्य परोपकार प्रेमी और पराक्रमी नहीं बनता, वह विद्या बेकार है।

विद्या की शक्ति की कितनी महती भूमिका बताई गई है-विद्या प्राप्त हो जाए तो व्यक्ति इतना शक्तिमान बन जाता है कि जीवन में आने वाले प्रत्येक संघर्ष का अडिग रहकर प्रत्युत्तर देता है। विद्या ही है जिससे व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है, विकास होता है। और हम यह भी जानते हैं कि व्यक्ति का चरित्र ही समाज-चरित्र व राष्ट्र-चरित्र का आधार है। मनुष्य को निजी स्वार्थ की सीमा के पार पर-उपकार प्रेमी बनाने वाली और पराक्रमी बनाने वाली भी विद्या ही है। इतना ही नहीं कहा गया है- 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् जो मुक्ति प्रदान करती है, वह विद्या है।

विद्या का अर्थ क्या है? शब्द कोष देखें, तो कहा है-शिक्षा आदि के द्वारा उपार्जित या प्राप्त ज्ञान। मोक्ष की प्राप्ति या परम-पुरुषार्थ की सिद्धि करने वाला ज्ञान।

ज्ञान का अर्थ जानकारी से नहीं है। ज्ञान तो वह है जो जाना है, वह जीवन में उतर आए, अनुभूत हो। जीवन में उतरे ज्ञान की परिणति होती है संस्कार। संस्कार द्वारा उचित प्रकार से सुसंस्कृत होकर जीव अपने आपको भगवत् प्राप्ति के योग्य बना सकता है। मोक्ष प्राप्त कर सकता है या परम-पुरुषार्थ (परमात्मा में मिलन ही परमपुरुषार्थ है।) की सिद्धि करने वाला बन सकता है। यही तो विद्या के अर्थ में कहा गया है-वह ज्ञान जो मोक्ष दिला सके।

ऐसी विद्या या ज्ञान प्राप्त कहाँ से हो? विद्या के अर्थ में कहा गया है-शिक्षा आदि के द्वारा उपार्जित या प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा आदि कहा गया है, अर्थात्-अकेली शिक्षा ही नहीं, उस ज्ञान या विद्या, जिसकी परिणति संस्कार रूप में होती है, की प्राप्ति के अन्य भी कुछ स्रोत हैं। इन महत्त्वपूर्ण स्रोतों में पहला स्रोत है आनुवंशिकता। जो पूर्व जन्म से व्यक्ति लेकर आता है। मनोवैज्ञानिक इसे माता-पिता के विचार, प्रवृत्ति-अभ्यास- आस्था तथा स्वभाव से प्राप्त संस्कार मानते हैं। पूर्व जन्म से प्राप्त संस्कारों के साथ माँ द्वारा बालक का लालन-पालन भी संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। जन्म से पूर्व माँ के गर्भ में रहते और जन्म के बाद माता-पिता और परिवार के बीच जैसे वातावरण में उसे रहना पड़ता है, उसका सीधा प्रभाव उसकी जीवन पद्धति पर पड़ता है। सही प्यार-दुलार न मिले तो वह उपेक्षा का शिकार बनता है और लाड-प्यार में उसे उच्छृंखल बना दिया जाए तो वह माता-पिता का भविष्य बिगाड़ने वाला ही बनता है। इसलिए बच्चे को सद्संस्कारी बनाने के लिये जैसे मोन्टेसरी पद्धति का प्रशिक्षण शिक्षकों को दिया जाता है, वैसे ही माता-पिता बनने से पूर्व माता-पिता को बालक के सही प्रकार से लालन-पालन हेतु शिक्षण दिया जाना चाहिये।

इसके बाद बालक का सामाजिक परिवेश तीसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत संस्कार निर्माण हेतु है, जिसमें विद्यालय, मोहल्ला, पड़ोसी, गाँव, सहपाठी, अध्यापकगण आदि आते हैं। इनमें विद्यालय सबसे महत्त्वपूर्ण है। विद्यालय में बालक शिक्षा ग्रहण करने आता है। शिक्षा का अर्थ समझने के लिये पुन: शब्द कोष को टटोलें। विद्या पढने अथवा कला सीखने की क्रिया को शिक्षा बताया गया है। कला सीखने की क्रिया का जहाँ तक प्रश्न है, आज की शिक्षा भाँति-भाँति की कलाएँ सिखाती हैं। कला जो बाह्य निर्माण की हो तो नई-नई तकनीक का विकास शिक्षा के माध्यम से लगातार हो रहा है। लेकिन राष्ट्र का निर्माण केवल सड़क निर्माण, बांध निर्माण, भवन निर्माण, वाहन निर्माण, यंत्र निर्माण, दूर संचार माध्यमों के नवीन स्रोतों के निर्माण से ही नहीं होता। राष्ट्र का निर्माण होता है राष्ट्र के नागरिकों के चरित्र निर्माण से और नागरिकों के चरित्र-निर्माण में

शिक्षा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा का सच्चा दायित्व तो मानव निर्माण में ही है।

शिक्षा का अर्थ विद्या पढना भी है। परन्तु वर्तमान शिक्षा इस अर्थ में खरी नहीं उतरती। आज की शिक्षा मानव जीवन की संपूर्णता या समग्रता को स्पर्श नहीं करती। साक्षरता या किताबी जानकारी और गणितीय दक्षता मानव जीवन का एक अंग मात्र है, जिसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि या दिमाग से है, पर मनुष्य कोरा मस्तिष्क ही तो नहीं है। मनुष्य एक उत्तम शरीर है, मनुष्य में एक दिल, एक भावना है, मनुष्य में एक अन्तर आत्मा या नैतिक चेतना भी है। पूरे जीव के इन समस्त अंगों का शिक्षण संतुलित रूप से होना चाहिये। ऐसा नहीं हो रहा इसलिए आज निजी स्वार्थ और सुखान्वेषण की बलिवेदी पर राष्ट्र हित को और समाज हित को चढा देने में किसी को संकोच नहीं हो रहा है। त्याग और बलिदानों की परम्परा कुण्ठित हो गई है। देश में आज भ्रष्टता तथा भूख (धन एवं सत्ता की अदम्य तृष्णा) का बोलबाला होता जा रहा है। लोगों को जो कार्य सुविधाजनक लगता है, उसे करने के लिये सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक बन्धनों को रूढी कहकर तोड़ रहे हैं। चारवाक् के मतानुयायियों ने जैसे भारतवर्ष में एक साथ अवतार लेकर भारत के क्या नैतिक और क्या धार्मिक, सभी आदर्शों को चुनौती देनी शुरू कर दी है।

संस्कारित शिक्षा देने के लिये शिक्षा की वर्तमान पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। पुस्तकीय जानकारियों के साथ ही चरित्र की महत्ता को जीवन में उजागर करने वाली शिक्षा हो। गुरु-शिष्य, माता-पिता का सच्चा सम्बन्ध जीवन में उतर सके; परिवार, समाज, राष्ट्र में-जिस किसी क्षेत्र में हों परस्पर सहयोगी भाव निर्मित करने वाली शिक्षा हो। 'विद्या ददाति विनयम्' के अनुसार शिक्षा जीवन में विनय पैदा करने वाली हो। मानव जीवन की सार्थकता, उसका उद्देश्य, परम सत्ता की ओर बढते रहने में है। यह शिक्षा द्वारा हमारे व्यवहार में उतारने की महती आवश्यकता है। इसी में विद्या का अर्थ सिद्ध होता है।

शिक्षा देने वाले शिक्षक की भी अपनी महती भूमिका है। शिक्षक ऐसा हो जो मानता है कि शिक्षक होना मेरा स्वसाध्य है। शिक्षण में उसकी आंतरिक रुचि हो। लेकिन आज अधिकार शिक्षक ऐसे मिलते हैं जिनकी आंतरिक रुचि शिक्षण देना नहीं है। तनख्वाह मात्र उनके जीवन का साध्य है। तब गुरु और शिष्य का पवित्र सम्बन्ध कैसे विकसित होगा। प्राचीन गुरुकुलों की व्यवस्था आज भले ही साकार न कर सकें, पर गुरु के उत्तरदायित्व को ईमानदारी से भली प्रकार निभाकर ही मैं परमगति को प्राप्त कर सकता हूँ, ऐसी भावना शिक्षकों में विकसित हो और इसी भावना से वे शिक्षण में जुटें तो वह शिक्षा विद्या या संस्कार देने में सफल होगी।

पृष्ठ 27 का शेष

बुद्धिमान

एक महान व्यक्ति एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से अलग है क्योंकि वह समाज का सेवक बनने के लिये तैयार है। व्यक्ति अपने गुणों से ऊपर उठता है, ऊँचे स्थान पर बैठने से नहीं। बुद्धि की शक्ति उसके उपयोग में है; विश्राम में नहीं। चालाकी का अर्थ बुद्धिमानी नहीं। एक मूर्ख व्यक्ति खुद को ज्ञानी समझता है लेकिन एक ज्ञानी व्यक्ति खुद को मूर्ख समझता है। उस व्यक्ति ने अमरत्व प्राप्त कर लिया है, जो किसी सांसारिक वस्तु से व्याकुल नहीं होता। सदैव प्रसन्नचित रहें।

''छिपाकर न रखना जो संचय हमारे,
जरा सोचो गहरे तो तुम्हीं ना तुम्हारे;
समझ में न आए तो यही बात जानो
अभी कई रातें जगानी है बाकी।।
मिटे तो हुआ क्या निशानी है बाकी;
कथाकार सोये कहानी है बाकी।''

अतः बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो पूरे संकल्प से, विनम्रता से, प्रसन्नचित्त रहकर, सोच विचारकर, कर्मरत रहकर कार्य को निपटाना जानता हो।

*

नारी शक्ति का कोई विकल्प नहीं

– भँवरसिंह रेड़ी

नर और नारी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तथा एक दूसरे के बिना अधूरे हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं फिर भी नारी के अभाव में मनुष्य का जीवन अधूरा है। नारी (मातृशक्ति) के अनेक रूप हैं- वह बाल्यावस्था में दुर्गा के रूप में प्रतिस्थापित होती है, उससे अगली अवस्था में भगिनी या आत्मजा कहलाती है व यौवनावस्था में नारी कहलाती है। पत्नी के रूप में पति सेवा का भाव रखकर पति सेवा में अपना सौभाग्य समझती है तो विपदा में मित्र के रूप में अपना धर्म निभाती है। इतना ही नहीं माता के रूप में पुत्र को खिलाती है तो पत्नी के रूप में भोग्या का रूप धारण करती है। वीर क्षत्राणियों ने युद्ध में भी साथ देकर अपना कर्तव्य निभाया है क्योंकि वह उसकी अर्धांगिनी, सहधर्मिणी अर्थात् धर्मपत्नी कहलाती है।

भारतीय नारी सृष्टि के प्रारम्भ से ही अनन्त गुणों की भण्डार रही है। जहाँ नर अपनी हार मानकर हिम्मत हार कर बैठ जाता है वहाँ नारी ही उसे हिम्मत बन्धाती है। रानी हाड़ी का चरित्र हमारे समाज के लिये गौरव का विषय है। उन्होंने युद्ध के लिए जाते हुए अपने पति देव को अपना मस्तक काट कर सहनाणी के रूप में दे दिया था। तुलसी को महा कवि रामभक्त तुलसीदास बनाने वाली तथा कालिदास को महापंडित बनाने वाली नारी ही थी। माता विदुला ने युद्ध से भागे हुए अपने राजकुमार के लिए दरवाजा नहीं खोला और मातृभूमि की रक्षार्थ वापस युद्ध के मैदान में भेजा तथा विजयी होकर आने पर ही दरवाजा खोला।

माताएँ ही बाल्यावस्था से ही अच्छे संस्कार देकर अपने सपूतों को मातृभूमि की रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देना सिखाती थी।

''इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालने, मरण बड़ाई माय।।''

''जन्म दिखाये जन्म दिन, मरण दिखायो आज।
बेटा हरख दिखावज्यो, मरण देश रे काज।।''

''सुत मरियो देशहित हरख्यो बन्धु समाज।
माँ न हरखी जन्मदिन जितनी हरखी आज।।''

''जौहर कर सतियाँ जली-उगत सूर उजास।
चिमकै अजै चित्तौड़ में सतियाँ रो परकाश।।''

''पाछा मत झांकियो-मत दिज्यो हार।
कट जावे भाल रणखेत में, पण मत आज्यो हार।।''

उपरोक्त दोहों से प्रमाणित होता है कि नारीशक्ति ने हमारे किसी भी दृश्य अर्थात् प्रत्येक परिस्थिति में हमें सम्बल दिया है। चाहे किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था हो, चाहे राजतंत्र हो, चाहे प्रजातंत्र हो, चाहे भक्तिकाल हो, चाहे वैज्ञानिक या चिकित्सकीय क्षेत्र हो कहीं भी नारी शक्ति पुरुषों से पीछे नहीं रही है।

महाराणा प्रताप और उनके साथ अनेकों वीर लम्बे संघर्ष में संघर्षरत रहे। उनके परिवार भी उस संघर्ष में सदैव भागीदार बने रहे। लेकिन उनकी विरांगनाओं ने सदैव अपने पतियों का मनोबल बढाया। वीरांगनाओं ने भी कष्ट भोगे लेकिन अपने कर्तव्य मार्ग पर सदैव अपने पतियों का उत्साह बढाया। भारत में तो पुरुष कभी अपने पथ से विचलित हुए हैं तो नारी ने उसे पथ भ्रष्ट होने से बचाया है।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपने छोटे से बच्चे को अपनी पीठ पर बाँधकर तथा घोड़े की लगाम को अपने दाँतों में पकड़कर, दोनों हाथों से तलवार चलाकर युद्ध के मैदान में दुश्मन के दाँत खट्टे कर दिए थे। मेवाड़ की नारियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला में कूद पड़ी थी।

प्राचीनकाल में हमारे देश में स्त्रियों को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया था। वेद शास्त्रों व धर्म ग्रन्थों में बार-बार यही दोहराया गया है कि जहाँ नारियों की पूजा (मान-सम्मान) होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ ऐसा नहीं होता है और इसके विपरीत नारियों का अपमान होता है वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं और वहाँ नरक का सा वातावरण बन जाता है। आज के परिवेश में अब नारी का वह आचरण नहीं रहा तथा ना ही वैसा चरित्र रहा जिस पर समूचे देश को गर्व था। इसके लिये

नारी अकेली दोषी नहीं है इसके पतन में पुरुष की भी समान भागीदारी है। बीच में एक युग ऐसा आया कि पुरुष ने नारी को केवल भोग की वस्तु समझकर रख दिया था उसने यह कभी नहीं सोचा कि नारी के बिना पुरुष अधूरा है। पुरुष ने स्त्री को अपने स्वार्थ के लिए देह और गेह तक ही सीमित कर दिया था। उसको घर में ही कैद करके रख दिया था और बाहर निकलने पर पाबन्दी लगा दी थी और नारी घर के अन्दर चार दीवारी के अन्दर ही घुट-घुट कर मरती रही। इस प्रकार की परिस्थितियाँ बनने व बनाने में पुरुष ज्यादा अपराधी है। पाश्चात्य संस्कृति व शिक्षा अर्थात् टी.वी. संस्कृति के अनुसरण से नारी ने कहीं अपना वह चरित्र व व्यवहार नहीं रखा जिसकी समाज में आवश्यकता है। नारी ही वंशवृद्धि व परिवार में बालक-बालिकाओं को अच्छे संस्कार देती है जिससे परिवार व समाज संस्कारवान व चरित्रवान व अनुशासित बनें। लड़के व लड़की में भेद समझकर लड़की से लड़के को कहीं ज्यादा महत्त्व व आवश्यक समझना भी नारी के दिमाग की उपज है। वह माँ है अत: उसे दोनों के पालन-पोषण में समानता रखनी चाहिए लेकिन वह ऐसा नहीं करती। बच्ची को पराया धन समझती है इस प्रकार जब माँ स्वार्थी हो जाती है तो वह माँ के गौरव व गरिमा से गिर जाती है। लड़की माँ का प्रतिरूप होती है, जैसी माता होगी वैसी ही उसकी पुत्री होगी। आज उसका आचरण ही उसकी पीड़ा का कारण है- हर लड़की को ससुराल जाना होता है, नये वातावरण के अनुसार उसको ढलना पड़ता है। जो प्यार दुलार उसको अपनी माँ के घर से मिला उसको वहाँ ससुराल में कैसे मिल सकता है, दहेज की कमी के कारण उसको सबके ताने सुनने पड़ते हैं। कोई भी सास-बहू को अपनी बेटी जैसा प्यार दुलार नहीं दे पाती और कोई भी माँ अपनी बेटी को बेटे जैसा प्यार नहीं दे पाती। समर्पण, श्रद्धा और विश्वास तथा एक जैसा प्यार ही अच्छे परिवार का आधार है और उसका निर्माण एक माँ ही कर सकती है। अत: माता की मानसिकता का सही होना जरूरी है तभी नारी को पीड़ा से मुक्ति मिल सकती है। माता की मानसिक विकृति ही सामाजिक विकृति का कारण है।

आदर्श नारी के लिए सर्वप्रथम अच्छी शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा से ही प्रत्येक नर नारी की बुद्धि का परिमार्जन होता है। उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान होता है, गुण और अवगुण की पहचान होती है, जीवन का वास्तविक मूल्य समझ में आता है। माता का आचरण ही संपूर्ण मानवता का आचरण है, उसे यह बात सदैव याद रखनी चाहिए कि उसके बड़े उत्तरदायित्व हैं। मानव समाज को उससे बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ व आशाएँ हैं। नारी को ही नहीं बल्कि नर को भी उसकी पीड़ा से मुक्त करवाना है। अत: आदर्श माता के लिए अच्छी शिक्षा, अच्छे संस्कार की आवश्यकता है। शिक्षित माता ही अपने शुद्ध आचरण से अपनी संतानों को चरित्रवान व संस्कारवान बना सकती है।

21वीं पीढ़ी में जब समाज और सरकार को जनगणना द्वारा पता लगा कि बेटी से बेटों को ज्यादा महत्त्व देने की सोच से लड़कों के अनुपात में लड़कियों की संख्या काफी घट चुकी है तो फिर सरकार व समाज की सोच में परिवर्तन आया और 'बेटी बचाओ बेटी पढाओ' का नारा चारों तरफ गूंजने लगा। भ्रूण हत्या पर रोक लगी व बेटी का महत्त्व भी समझने लगे।

महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में आगे आकर अच्छे-अच्छे पदों पर नियुक्त होने लगी। महिलाएँ राजनीतिक क्षेत्र में भी सहायक कर्मचारी से देश के सर्वोच्च पद राष्ट्रपति पद तक पहुँच चुकी हैं। देश में राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि कई बड़े-बड़े राज्यों में मुख्यमंत्री बन चुकी हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र में अंतरिक्ष यात्रा तक कर चुकी है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी मीरा बाई, करमा बाई आदि ने अपना नाम अमर किया है। अब तो पंचायत चुनावों में पंच, सरपंच, पं. समिति सदस्य, जिला परिषद सदस्य, प्रधान व जिला प्रमुख पदों पर महिलाओं को आरक्षण देकर बराबर का स्थान दिया है।

हमारे समाज की बालिकाओं व महिलाओं को क्षत्रिय युवक संघ द्वारा संचालित विभिन्न श्रेणी-प्राथमिक, माध्यमिक आदि बालिका शिविरों व दंपत्ती शिविरों में भेजना चाहिए जिससे वहाँ रहकर क्षत्रियोचित संस्कारों व रीति-नीतियों में अपने आप को ढालकर परिवार व समाज को सुसंस्कृत बना सके।

✻

धारावाहिक

चित्रकथा–'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

– बृजराजसिंह खरेड़ा

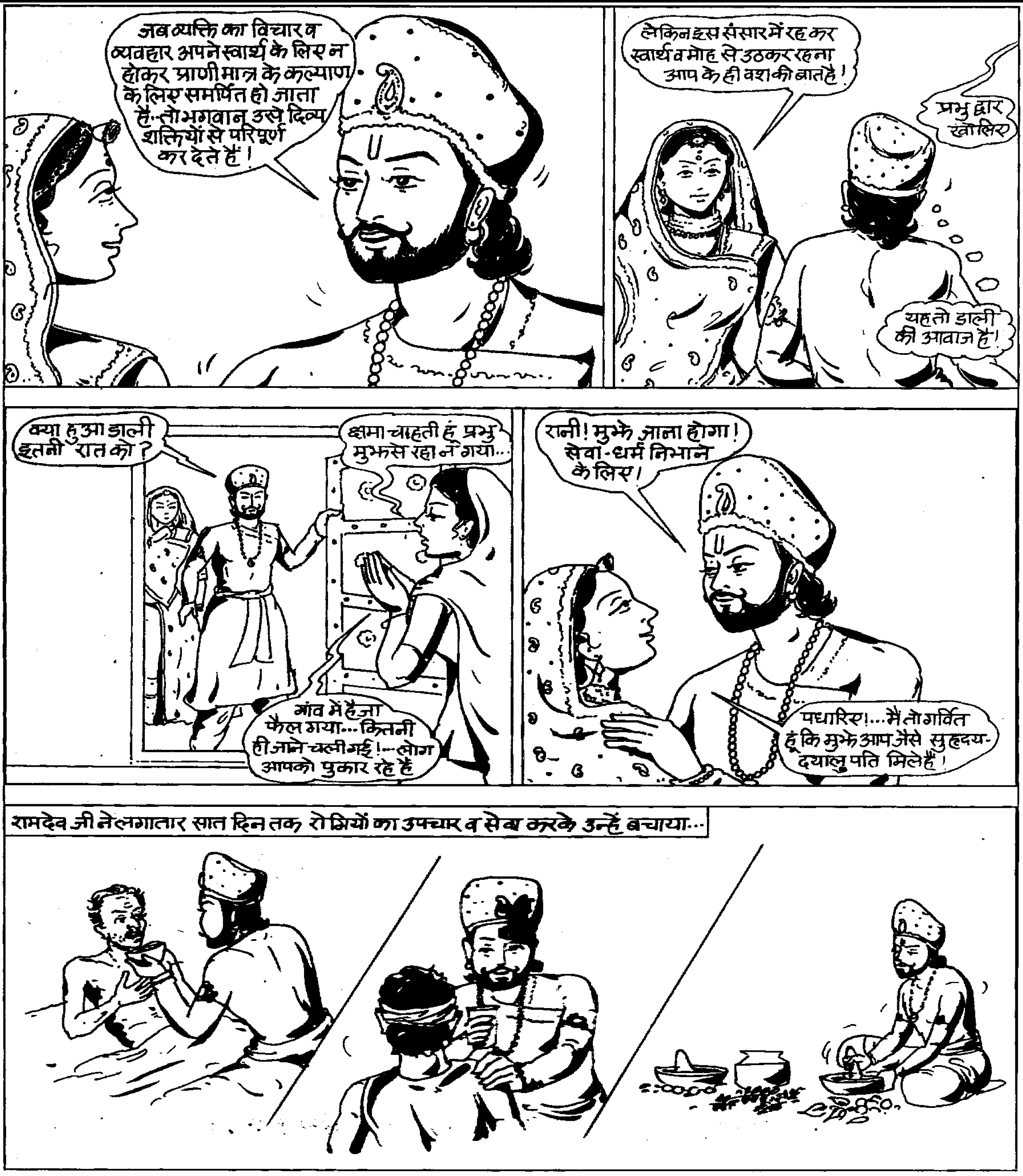

गांव वालों की सेवा से निवृत होते ही वीरमदेवरा से संदेश आ गया
स्वामी आपके भाभी सा ने आपको शीघ्र बुलाया है।
फिर तो पहले वीरमदेवरा ही जाना पड़ेगा
देवर जी! कुछ समय पूर्व ही इस गाय ने बछिया को जन्म दिया था.. अब लोग कह रहे हैं कि यह मर चुका है अब आप ही कुछ कीजिए!
मैं देखता हूं।
रामदेव जी ने फिर चमत्कार कर दिया...
लो भाभी आपकी बछिया भी जिन्दा है और गाय माता भी खुश... चलता हूं नेतलदे तो विवाह के बाद से ही मेरी प्रतीक्षा कर रही है।
देवर जी आपका बहुत बहुत धन्यवाद!
कई दिनों बाद नेतलदे के पास पहुंचे
रानी, मेरी समाज सेवा का मूल्य आपको भी एकाकी रह कर चुकाना पड़ता है..
तो क्या हुआ!... आपके परहित कार्यों से थोड़ा बहुत पुण्य मेरे खाते में भी आ जाएगा...
अवश्य मिलेगा पुण्य! क्योंकि आपके सहयोग बिना कुछ संभव नहीं
समाज सेवा के साथ गृहस्थ धर्म भी निभाया... समय आने पर नेतलदे ने दो पुत्रों को जन्म दिया- सादो व देवराज को।
रामदेव जी जीवनभर छुआछूत मिटाने के साथ हिन्दू धर्म को संगठित करने में लगे रहे, धर्मान्तरण का विरोध करते रहे
उपेक्षित जाति वर्ग में स्वाभिमान के साथ मुस्कराहट दिखने लगी है... यह मानवता की जीत का शुभारम्भ है!
वर्णो-वर्णो के जाति भेदभाव, अस्पृश्यता भाव ने हिन्दू समाज को कितना खोखला कर दिया था.. संतोष है कि लोगों की आंखों से अज्ञान की पट्टी खुलने लगी है

अपनी बात

एक संत का कथन है-यह जीवन ही नहीं है, जिसको आप जीवन कहते हैं। संत कहते हैं-यह तो मरने की लम्बी प्रक्रिया है, जीवन नहीं है। हम इसे जीवन कहते हैं लेकिन न तो इसमें हम आनन्द को पाते हैं, न हम शान्ति को जान पाते हैं, न हम प्रेम को जान पाते हैं, न हम प्रकाश को जान पाते हैं। कोई सौंदर्य का अनुभव जीवन में नहीं हो पाता। होगा कैसे? मरने की प्रक्रिया में होगा कैसे? मरने में तो होगा दुख, मरने में होगी पीड़ा, मरने में होगी चिन्ता, मरने में होगा अंधकार, रोज बढता हुआ अंधकार जीवन को घेरता चला जाता है।

इसीलिए तो लोग कहते हैं कि बचपन के दिन बड़े सुख के दिन थे। कैसी अजीब बात है? अगर जीवन विकसित हो रहा है तो बुढापे के दिन सबसे ज्यादा सुख के दिन होने चाहिए। बचपन के दिन क्यों? बचपन तो थी शुरुआत, बुढापा है पूर्णता। तब बुढापे के दिन होने चाहिए सुख के दिन। अगर जीवन बढा है तो आनन्द बढना चाहिए, लेकिन हम सब तो गीत गाते हैं कि बचपन के दिन बड़े खुशी के दिन थे। कवि कविताएँ लिखते हैं कि बड़े सुख थे बचपन में। बड़ा आनन्द था बालपन में। निश्चित ही यह इस बात का सबूत है कि बचपन के बाद हम जिस यात्रा पर चल रहे हैं वह जीवन की यात्रा नहीं, मृत्यु की यात्रा है। इसलिए दुख बढता जाता है। मृत्यु की छाया बढती जाती है, पीड़ा बढती जाती है। तभी बचपन के दिन सुखद मालूम होते हैं।

कोई व्यक्ति ठीक प्रकार जिएगा और जीवन को अनुभव करेगा तो रोज-रोज उसका आनन्द बढता जाना चाहिए। विकास का तो यही अर्थ है। यदि बुढापे में दुख है तो यह जीवन का विकास है या पतन है? हम नीचे उतरते हैं या ऊपर जाते हैं? बचपन की सुखद स्मृति गलत प्रकार से जीवन जीने का सबूत है। जीवन ठीक से नहीं जिया गया है, जाना नहीं गया है, पहचाना नहीं गया है। लेकिन इसको हम मान लेते हैं कि यह जीवन है। यह जीवन नहीं है। यह जीवन हो भी नहीं सकता। जीवन की इसमें गंध भी नहीं है। जीवन के स्वरों का हमें कोई बोध भी नहीं है कि कहाँ जीवन का संगीत छिपा है।

एक संत के आश्रम में एक वृद्ध साधक आया। संत ने उस वृद्ध साधक से पूछा-तुम्हारी उम्र क्या है? उस साधक ने कहा-चार वर्ष। वह बूढा था। संत और उसके साथ बैठे शिष्य हैरान हुए। संत ने सोचा शायद मेरे समझने में कुछ भूल हुई है। फिर पूछा-मेरे मित्र तेरी उम्र क्या है? उस बूढे ने कहा-मैंने निवेदन किया है, चार वर्ष। संत ने कहा-बड़ी हैरानी में डाल दिया है तुमने। प्रतीत होते हो कोई सत्तर वर्ष तुम्हारी उम्र होगी, कहते हो चार वर्ष? किस हिसाब से गणना करते हो?

उस बूढे ने कहा कि चार वर्ष से पहले जो था वह जीवन नहीं था, उसकी मैं गिनती नहीं करता। इधर चार वर्षों से जीवन की सुगन्ध मिलनी शुरू हुई है। चार वर्षों से चित्त शान्त हुआ है। इधर चार वर्षों से निर्विचार हुआ, चार वर्षों से भीतर झांका तो उसकी प्रतीति हुई जो जीवन है। बाहर तो थी मृत्यु, जीवन था भीतर, मैं बाहर ही देखता रहा, देखता रहा। तो मैंने मृत्यु को जाना था चार वर्ष पहले। उस उम्र को कैसे जीवन की उम्र बताऊँ? वह मेरी गणना में नहीं आती।

संत ने अपने शिष्यों से कहा-सुना है उसे रखो मन में। इस आदमी ने जिन्दगी को नापने की नई बात बताई है। आज से आप लोगों की उम्र भी उसी दिन से नापी जाए, जिस दिन से शान्ति मिले, जीवन को अनुभव करें। उससे पहले की उम्र को जोड़ने की अब कोई जरूरत नहीं है।

जीवन है भीतर, जीवंत कोई धारा, कोई चेतना भीतर है। ऊपर उसके खोल है शरीर का। शरीर मरणधर्मा है। शरीर को जो जीवन मान लेता है, वह मृत्यु को जीवन समझकर जी लेता है। तब होता है दुख, बहुत पीड़ा।

हम भीतर झांके। भीतर जीवन की सुगंध पाने का प्रयास करें। शान्त चित्त बनें, निर्विचार बनें ताकि जीवन जीना प्रारम्भ कर सकें।

श्री क्षत्रिय युवक संघ का हीरक जयन्ती वर्ष

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

हम कदम यों ही आगे बढाते रहे, तो धरा आसमां छोटे हो जायेंगे।
जो बाँहें मिली वे मिली ही रही, तो नसीबों के साये भी मुस्करायेंगे।।

श्री जीवन सिंह जी शक्तावत (नरधारी) वरिष्ठ अध्यापक (गणित)
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय बानसेन से पदोन्नति पर प्रधानाध्यापक,
राजकीय माध्यमिक विद्यालय पंचदेवला, चित्तौड़गढ़ में
कार्यभार ग्रहण करने पर हार्दिक बधाइयाँ और शुभकामनाएं

श्री जीवन सिंह जी शक्तावत (नरधारी)

शुभेच्छु :- बृजराजसिंह खारड़ा, भँवर सिंह बेमला, नरेन्द्रसिंह नरधारी,
लक्ष्मणसिंह बडौली माधौ सिंहजी, विजयराजसिंह जालिया, भगवानसिंह देवगांव, अरविंदसिंह गेहूंवाड़ा,
सुरेन्द्रसिंह रोलसाहबसर, हनुमंतसिंह सज्जनसिंह का गड़ा, फतहसिंह भटवाड़ा

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी - स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

मार्च, सन् 2021

वर्ष : 58, अंक : 03

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,

जयपुर-302012

दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com

Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह